स्वदेशी पत्रिका

वर्ष–21, अंक–6, ज्येष्ठ–आषाढ़ 2070, जून 2013

संपादक
विक्रम उपाध्याय

कार्यालय
धर्मक्षेत्र, सेक्टर–8, बाबू गेनू मार्ग रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022 से प्रकाशित
दूरभाष : 011–26184595
स्वदेशी जागरण समिति की ओर से ईश्वर दास महाजन द्वारा कॉम्पीटेंट बाइन्डर्स (प्रिंटिंग यूनिट), नवीन शाहदरा, दिल्ली–32 से मुद्रित।

आवरण कथा–4

पिछले 40 दिनों में हमारा रुपया डालर के मुकाबले में 5.20 रुपये नीचे जा चुका है। बढ़ता भुगतान शेष और उसके कारण बढ़ता विदेशी मुद्रा संकट रुपए में कमजोरी का मुख्य कारण बताया जा रहा है। बढ़ता भुगतान शेष हमारे तेजी से बढ़ते हुए आयातों और उसके मुकाबले पिछड़ते हुए निर्यातों के कारण है।

कवर पेज

अनुक्रम

आवरण कथा
पिछड़ते निर्यात और भ्रमित सरकार
– डॉ. अश्विनी महाजन /4

एफडीआई
प्रत्यक्ष विदेशी पूंजी निवेशः देश की गुलामी की पहली सीढ़ी
– डॉ. धीरेन्द्र नन्द /6

दृष्टिकोण : विदेशी कर्ज के जाल में अर्थव्यवस्था
– स्वदेशी संवाद /9

सामयिकी : भारत निर्माण का खोखला दावा
– निरंकार सिंह /11

कृषि : कृषि ऋण की बंदरबांट
– देविन्दर शर्मा /14

अर्थतंत्र
पालिसी पैरालिसिस का कारण
– डॉ. भरत झुनझुनवाला /16

अभिमत : धुंधली हुई आर्थिक तस्वीर
– सी.एम. वासुदेव /18

मुद्दा : कब मिलेगा सबके लिए स्वास्थ्य चिकित्सा
– भारत डोगरा /20

समस्या : कब तक जान लेगा तम्बाकू
– महेश परिमल /22

अंतर्राष्ट्रीय : करजई करें त्रिकोणात्मक कूटनीति
– डॉ. वेदप्रताप वैदिक /24

लेख : मारे गए बेचारे कौए
– उमेश प्रसाद सिंह /26

पर्यावरण :
हर दिन पर्यावरण को बचाने का संकल्प लें /28

चर्चा : वोट बटोरने के लिए गलत कदम
– बलवीर पुंज /30

प्रतिक्रिया : वार्ता से निकलेगा समाधान
– अभिषेक रंजन सिंह /32

राजनीतिक चरित्र में बदलाव की दरकार
– अवधेश कुमार /33

पाठकनामा/2, रपट/35

पाठकनामा

आईपीएल क्रिकेट नहीं सट्टेबाजों का खेल है

मैं स्वदेशी पत्रिका का नियमित पाठक हूँ। पिछले कुछ दिनों से जिस तरह हमारे खिलाड़ियों ने क्रिकेट को बदनाम किया है उसे देखकर काफी दुख होता है। माना क्रिकेट का जन्म इंग्लैण्ड में हुआ परन्तु आज क्रिकेट का जूनून प्रत्येक भारतीयों के दिल में बस गया है। अब क्रिकेट भारतीयों के लिए जूनून के साथ–साथ देश का सबसे प्रसिद्ध खेल भी है। लेकिन आईपीएल में हुई 'स्पॉट फिक्सिंग' ने क्रिकेट प्रेमियों को काफी निराश कर दिया है। 'स्पॉट फिक्सिंग' में दोषी पाए गए भारतीय तेज गेंदबाज एस. श्रीसंत, अंजित चंदीला और अंकित चव्हाण (सभी राजस्थान रॉयल्स टीम के खिलाड़ी) हैं। ये तीनों खिलाड़ी सट्टेबाजों के साथ योजना बनाकर एक ओवर फिक्स करने के लिए 60–70 लाख रुपए लेते थे।

इन खिलाड़ियों के अलावा विन्दू दारा सिंह, बीसीसीआई के अध्यक्ष श्रीनिवासन के दामाद मयप्पन भी सट्टेबाजी में दोषी पाए गए। अब शिल्पा शेट्टी और उनके पति भी सट्टेबाजियों की सूची में शामिल हो गए हैं। जब देश की प्रसिद्ध हस्तियां और प्रसिद्ध उद्योगपति भी इस खेल में सट्टेबाजी करें तो वह क्रिकेट नहीं बल्कि क्रिकेट प्रेमियों के साथ एक धोखा ही है। उन क्रिकेट प्रेमियों पर क्या बीती होगी जब उसका प्रसिद्ध खिलाड़ी अपनी बॉल फैंकने के लिए भी स्पॉट फिक्सिंग में लगा हुआ था। इसके अलावा देशद्रोही दाऊद भी इस आईपीएल में सट्टेबाजी कर रहा था। हमें दिल्ली पुलिस और मुंबई पुलिस को इसके लिए धन्यवाद देना होगा जिन्होंने 'स्पॉट फिक्सिंग' का यह मामला जनता के सामने लाया। **– दिनेश रावत, चटिंग्याला गांव, नन्द प्रयाग, उत्तराखण्ड**

क्रिकेट में सट्टेबाजी को वैधानिक नहीं बनाना चाहिए

आज चन्द लोग और प्रसिद्ध भारतीय फुटबॉल खिलाड़ी सरकार को राय दे रहे हैं कि सट्टेबाजी को वैधानिक बनाने पर विचार किया जाए। आईपीएल में स्पॉट फिक्सिंग का जिस प्रकार मामला सामने आया है तो शायद सरकार में मौजूद कुछ लोगों को लगा हो कि अगर सट्टेबाजी कानूनी हो जाए, तो मैच फिक्सिंग से भी कुछ राजस्व की उगाही हो जाएगी। इसे कानूनी अमलीजामा पहनाने से रोजगार भी उत्पन्न होगा और सरकार को करोड़ों का टैक्स भी मिलेगा। देखा जाए तो यह बिल्कुल गलत है। हमें इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि एक गलती को छुपाने के लिए दूसरी गलती को खोल दिया जाए तो यह समझदारी नहीं है। इसलिए जरूरी यह है कि सट्टेबाजी को रोकने के लिए कड़े नियम बनाए जाए और कठोर सजा भी दी जाए तभी क्रिकेट और खेल प्रेमियों के साथ न्याय होगा। **– मनोज कुमार, मकान नं. 1/5438 गली नं.15, बलवीर नगर एक्सटेंशन, शाहदरा, दिल्ली**

आवश्यक नहीं कि इस अंक के भीतर प्रस्तुत लेखकों के विचार स्वदेशी पत्रिका के संपादक मंडल के विचारों से मेल खाते हों। पाठकों की जानकारी के लिए उन्हें यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

संपादकीय कार्यालय

''धर्मक्षेत्र'' शिव शक्ति मन्दिर, सैक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022

दूरभाष : 011–26184595 • ई–मेल : swadeshipatrika@rediffmail.com

अगर आप घर बैठे स्वदेशी पत्रिका चाहते हैं तो डिमांड ड्राफ्ट, मनीऑर्डर अथवा चेक द्वारा शुल्क *'स्वदेशी पत्रिका'* दिल्ली के नाम भेजने का कष्ट करें।

वार्षिक सदस्यता शुल्क : 150 रुपए

आजीवन सदस्यता शुल्कः 15,00 रुपए

यदि शुल्क भेजने के उपरांत भी आपको पत्रिका समय पर उपलब्ध नहीं हो पा रही है तो तुरंत पत्रिका कार्यालय को सूचित करें।

या आप सीधे बैंक ऑफ इंडिया, खाता नं. 602510110002740

IFSC : BKID 0006025 (Ramakrishnapuram)

उन्होंने कहा

नक्सलियों के हमले में हमारी पार्टी के नेता मारे गए, लेकिन हमारा देश नक्सलवाद के आगे कभी झुकेगा नहीं।

– प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह

किसी राजकीय दल के काफिले पर हुआ यह सबसे बड़ा हिंसक हमला है। इसकी हम कड़ी भर्त्सना करते हैं। हिंसा किसी भी समस्या का समाधान नहीं हो सकती है।

– राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरकार्यवाह श्री भैया जी जोशी

वर्षों से लोग नक्सल आतंक के विरूद्ध लड़ रहे हैं और अब भी यह लड़ाई पूरी तीव्रता के साथ जारी रहेगी। इस भीषण हत्याकांड के लिए जो भी जिम्मेदार है उन्हें बख्शा नहीं जाएगा।

– डॉ. रमन सिंह

केन्द्र सरकार ने आंतरिक सुरक्षा पर राज्यों के साथ होने वाली बैठक को महज सालाना रस्म बनाकर छोड़ दिया है। राज्यों की एक भी सिफारिश इस दौरान नहीं मानी गई।

– सुखबीर सिंह बादल

स्पॉट फिक्सिंग विवाद से क्रिकेट की छवि खराब हुई है। मैं अपनी ओर से क्रिकेट में साफ–सफाई की पूरी कोशिश करूंगा।

– जगमोहन डालमिया

संपादकीय

खस्ताहाल अर्थव्यवस्था और नेतृत्व चारों खाने चित

देष में उठे राजनीतिक बंवडर के कारण भले ही आर्थिक खतरों पर सब की नजर न जा रही हो। पर हालात इतने बिगड़ चुके हैं कि किसी भी समय देष के सामने भुगतान संतुलन का जबर्दस्त संकट आ चुका है। हाल ही में रिजर्व बैंक द्वारा जारी आकड़ों से पता चलता है कि भारत के विदेषी मुद्रा भंडार में तेजी से गिरावट आई है। बैंक के अनुसार इस 31 मई को बीते सप्ताह में भारत के विदेषी मुद्रा भंडार में 4.12 अरब डॉलर की कमी आई। एक तरफ सोने की गिरती कीमतें, दूसरी तरफ डॉलर के मुकाबले रुपये का तेजी से होता अवूल्यन और उस पर से विदेषी निवेष में भारी गिरावट ने विदेषी मुद्रा का भंडार खाली कर दिया है। खतरा इस हद तक बढ़ गया है कि विदेषी मुद्रा के आवक को बढ़ाने के लिए सरकार कई ऐसे क्षेत्र में विदेषी निवेष की सीमा बढ़ाने पर विचार कर रही है, जिस पर अभी तक रोक लगी थी। रुपया गिरते गिरते लगभग 60 रुपये प्रति डॉलर पर आ गया है। हालांकि रिजर्व बैंक के हस्तक्षेप से कुछ समय के लिए मामूली सुधार भी हुआ लेकिन जिस तरह की अंतरराष्ट्रीय बाजार की स्थिति है उससे इस बात की पूरी आषंका है कि आने वाले दिनों में भी रुपया की कीमत में गिरावट देखी जाएगी। अमरीकी बैंक मेरिल लिंच की माने तो भारत की अर्थव्यवस्था ऐसे ही हिचकोले खाते रहेगी। जाहिर है कि रुपये में गिरावट का सीधा असर हमारे आयात बिल पर पड़ेगा। पेट्रोलियम पदार्थों की कीमत लगातार बढ़ती जाएगी। यह आकलन है कि रुपये की कीमत में एक रुपये के अवमूल्यन से ही भारतीय तेल कंपनियों का घाटा 50 अरब रूपये का हो जाता है। जाहिर है तेल कंपनियों के घाटे की भरपाई आम उपभोक्ता ही करेंगे। खिलौने से कार तक महंगी हो जाएंगे, चिंता केवल रुपये के गिरने की नहीं है, बल्कि इसे मजबूती देने के लिए आवष्यक घरेलू उद्योग की बिगड़ती सेहत को लेकर भी है। मई में औद्योगिक उत्पादन वृद्धि दर दो फीसदी मात्र रहने का मतलब है देष औद्योगिक मंदी की ओर भी जा रहा है। अभी से ही यह आषंका व्यक्त की जा रही है कि आने वाले दिनों में ऑटो समेत निर्माण क्षेत्र के कई उद्योगों में छंटनी होने वाली है। यानी लोग नौकरी से निकाले जाएंगे। यदि ऐसा हुआ तो सबके लिए यह बुरी खबर होगी। क्योंकि चुनाव वाले वर्ष में वैसे भी सब तरह की परियोजनाएं लगभग रूक जाती है। निजी क्षेत्र इस समय बहुत ही बुरे दौर से गुजर रहा है। लगगभग सभी कॉरपोरेट घराने तरलता के संकट से गुजर रहे हैं। किसी भी नई शुरूआत की गुजाइंष नहीं होने के कारण रोजगार सृजन लगभग बंद हो गए हैं। वैसे में देष की आर्थिक बदहाली लोगों के लिए भारी मुसीबत का कारण बन सकती है। हालांकि वित्त मंत्रालय और प्रधानमंत्री कार्यालय इस दिलासा में लगा है कि स्थिति जल्दी काबू में आ जाएगी लेकिन पिछले कई वर्षों से बिगड़ रहे हालात पर काबू नहीं पाया जा सका है। 2004 में आठ फीसदी की आर्थिक विकास की दर से गिरती हुई हमारी अर्थव्यवस्था अब चार फीसदी की जीडीपी पर आ गई है, और आगे राह और कठिन दिखाई दे रही है, वैसे में इस चुनावी वर्ष में आर्थिक हालात कैसे सुधरेंगे कहना बेहद कठिन है। हालांकि रिजर्व बैंक और वित्त मंत्रालय आपसी समझ बूझ के आधार पर रूपये में सुधार और अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने के दावे कर रहे हैं, पर कार्रवाई इतनी लचर और देरी से हो रही है कि उसका असर आते आते बहुत देरी हो जा रही है। उदाहरण के लिए औद्योगिक उत्पादन बढाने और अन्य आर्थिक गतिविधियों को शुरू करने के लिए यह सुझाव दिया जा रहा है कि रिजर्व बैंक को शीघ्र ही सीआरआर में कमी और रेपो दर में और रियायत देनी चाहिए, लेकिन महंगाई पर अंकुष के लिए रिजर्व बैंक अभी सस्ते कर्ज देने के लिए तैयार नहीं है। आरबीआई की ओर से लगातार कहा जा रहा है कि मुद्रा स्फीति की दर दो अंकों से नीचे लगातर एकल अंक में रखना है तो कठोर मौद्रिक नीति को जारी रखनी होगी। दूसरी ओर यह भी कहा जा रहा है कि किसी भी तरह से देष में विदेषी निवेष के प्रवाह को बढ़ाया जाना चाहिए। खुदरा व्यापार के क्षेत्र में अपेक्षित विदेषी निवेष के नहीं आने से सरकार इस उधेड़ बुन में लगी है कि आखिर कौन सा सेक्टर और खोला जाए या किस सेक्टर में विदेषी निवेष की सीमा बढ़ाई जाए जिससे देष में विदेषी पूंजी निवेष का माहौल बने। पर इस समय भारत के प्रति विदेषी निवेषक भी आषंकित है। कल तक जिस भारत को दुनिया के चार बड़े सुपरपावर में विष्व गिन रहा था आज तमाम रेटिंग एजेंसिया उसी भारत को निवेष के लायक उपयुक्त जगह करार देने में किंतु परंतु कर रहे हैं। क्या यूपीए के अध्यक्ष और प्रधानमंत्री को इस बात का अहसास है?

आवरण कथा

पिछड़ते निर्यात और भ्रमित सरकार

जून 10, 2013 को जारी रिजर्व बैंक के मासिक बुलेटिन के अनुसार वर्ष 2012–13 में भारत से वस्तुओं के कुल निर्यात 300.6 अरब डालर रहे, जबकि आयात 491.5 अरब डालर तक पहुंच गए। इसका मतलब है कि वर्ष 2012–13 के लिए देश का व्यापार घाटा 191 अरब डालर तक पहुंच गया। इसके साथ ही देश का भुगतान शेष का घाटा भी 100 अरब का आंकड़ा पार कर जाएगा।

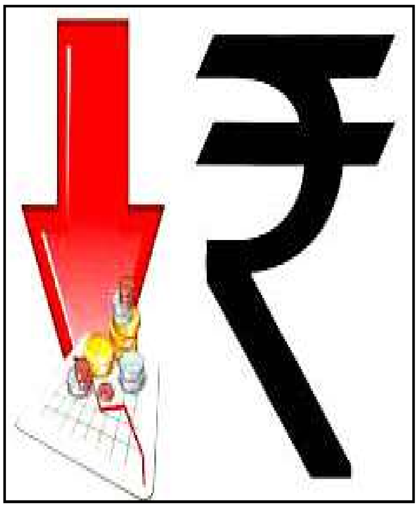

■ डॉ. अश्विनी महाजन

आज जरूरत इस बात की है कि सरकार उपभोक्ता वस्तुओं, टेलीकॉम, पावर प्लांट और अन्य परियोजना वस्तुओं (खासतौर पर चीन से) के आयातों पर पाबंदी लगाएं। सोना–चांदी के आयातों पर प्रभावी नियंत्रण लगे, विदेशी संस्थागत निवेशकों के निवेशों पर तीन साल का लॉक–इन पीरियड का प्रावधान लागू किया जाए और विदेशी कंपनियों द्वारा अनधिकृत रूप से किए जा रहे विदेशी मुद्रा अंतरणों पर प्रभावी रोक लगाई जाए। यदि सरकार ने ये कदम जल्दी नहीं उठाए तो देश भयंकर विदेशी मुद्रा संकट में फंस सकता है।

पिछले 40 दिनों में हमारा रुपया डालर के मुकाबले में 5.20 रुपये नीचे जा चुका है। बढ़ता भुगतान शेष और उसके कारण बढ़ता विदेशी मुद्रा संकट रुपए में कमजोरी का मुख्य कारण बताया जा रहा है। बढ़ता भुगतान शेष हमारे तेजी से बढ़ते हुए आयातों और उसके मुकाबले पिछड़ते हुए निर्यातों के कारण है।

पिछले कई वर्षों से सरकार बढ़ते आयातों के मद्देनजर लगभग मूकदर्शक बनी हुई है। वर्ष 2011–12 में 50 अरब डालर सोने का और 10 अरब डालर सोने का आयात हो गया। इसी दौरान चीन के साथ हमारा व्यापार घाटा 40 अरब डालर तक पहुंच गया। शेष दुनिया के साथ भी हमारा व्यापार घाटा लगातार बढ़ता जा रहा है। उधर रुपए की कमजोरी के सामने सरकार असहाय महसूस कर रही है। भारतीय रिजर्व बैंक भी रुपए को थामने का प्रयास करता दिखाई नहीं दे रहा। सरकार को डर है कि रुपए को थामने का कोई भी प्रयास हमारे विदेशी मुद्रा भंडारों को खतरे में डाल सकता है।

जून 10, 2013 को जारी रिजर्व बैंक के मासिक बुलेटिन के अनुसार वर्ष 2012–13 में भारत से वस्तुओं के कुल निर्यात 300.6 अरब डालर रहे, जबकि आयात 491.5 अरब डालर तक पहुंच गए। इसका मतलब है कि वर्ष 2012–13 के लिए देश का व्यापार घाटा 191 अरब डालर तक पहुंच गया। इसके साथ ही देश का भुगतान शेष का घाटा भी 100 अरब का आंकड़ा पार कर जाएगा।

भूमंडलीकरण के इस दौर में 1990–91 के बाद देश में आयात तेजी से बढ़ने लगे, जो इस बात से स्पष्ट है कि देश में आयात जो 1990–91 में मात्र 24 अरब डालर थे, वो 2012–13 में बढ़कर 492 अरब डालर तक पहुंच गए। इस दौरान हमारे निर्यात 18 अरब डालर से बढ़कर 301 अरब डालर तक ही पहुंच पाया। नतीजन हमारा भुगतान घाटा जो 1990–91 में मात्र 6 अरब डालर का था, वह 2012–13 तक 191 अरब डालर तक पहुंच गया।

यह सही है कि भूमंडलीकरण के दौर में हमारे निर्यात भी बढ़े हैं, लेकिन आयातों की बढ़ने की गति कहीं ज्यादा रही। 1990–91 में हमारे आयात जीडीपी का 8.1 प्रतिशत हुआ करते थे, जो बढ़कर 2012–13 तक जीडीपी के 28.3 प्रतिशत तक पहुंच गए। लेकिन इस दौरान हमारे निर्यात जीडीपी के 6.1 प्रतिशत से बढ़कर 17.3 प्रतिशत तक ही पहुंच पाए। इसका नतीजा यह हुआ कि देश का व्यापार घाटा जो 1990–91 में जीडीपी का मात्र 2 प्रतिशत हुआ करता था, बढ़कर अब जीडीपी का 11 प्रतिशत तक पहुंच गया है।

क्यों पिछड़े निर्यात?

1990–91 में शुरु की गई आर्थिक नीति के पक्ष में एक बड़ा तर्क यह था कि बड़े व्यापार घाटे और भुगतान घाटे के चलते देश पर विदेशी कर्ज का भार बढ़ रहा था। राष्ट्र के लिए विदेशों पर निर्भरता और विदेशी कर्ज का बढ़ना, उसकी सम्प्रभुता और विकास के लिए अवरोध खड़ा करता है। ऐसे में यह तर्क दिया गया कि उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण

के रास्ते पर चलकर हम देश को कर्ज मुक्त बना सकते हैं, और अपनी सम्प्रभुता की रक्षा भी कर सकते हैं। विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू.टी.ओ.) के समझौतों के अंतर्गत आयातों पर लगे टैरिफ और गैरटैरिफ नियंत्रण हटा दिये गए। टैरिफ कम होने से देश में आयात बढ़ने लगे, निर्यातों में भी वृद्धि हुई, लेकिन आयातों में होने वाली वृद्धि निर्यातों में वृद्धि से कहीं कम थी। नतीजन हमारा घाटा बढ़ता गया।

अन्य देशों द्वारा हमारे साजोसमान पर तरह–तरह के नियंत्रण और गैर बराबरी के व्यवहार के चलते हमारे निर्यात तेजी से नहीं बढ़ने के कारण देश का भुगतान घाटा जो 1990–91 में (जब नई आर्थिक नीति शुरू हुई), मात्र 9.44 अरब डालर था, जो जीडीपी का 3.3 प्रतिशत था, 2012–13 में बढ़कर 100 अरब डालर से भी अधिक हो गया है और पिछली तिमाही में यह जीडीपी का 6.7 प्रतिशत आंका गया।

वर्ष 2008 में हमारे विदेशी मुद्रा भंडार तीन वर्षों के आयातों के लिए पर्याप्त थे। आज हमारे विदेशी मुद्रा भंडार, जो पहले से थोड़े कम भी हुए हैं, आयातों की मात्रा बढ़ने के कारण अब मात्र छः महीने के आयातों के लिए ही पर्याप्त हैं। यही नहीं पिछले तीन वर्षों में देश पर कर्ज भी भारी मात्रा में बढ़ा और जो कर्ज वर्ष 2009 में 224.5 अरब डालर था, दिसम्बर 2012 तक 374 अरब डालर तक पहुंच गया। इसमें वो कर्ज शामिल नहीं है, जो हमारी कंपनियों ने अन्य देशों में ले रखे हैं।

व्यापार शेष में बढ़ते घाटे का असर चालू खाते पर भुगतान शेष पर भी पड़ता है। भुगतान शेष वो राशि होती है, जो किसी देश को अपने आर्थिक लेनदेन के हिसाब–किताब में शेष विश्व को देनी पड़ती है। जब व्यापार घाटा बढ़ा तो भी शुरुआती दौर में भुगतान घाटा काबू में रहा। इसका कारण यह था कि हमें सॉफ्टवेयर निर्यातों से खासी आमदनी होने लगी थी। यही नहीं हमारे अनिवासी भारतीयों द्वारा भी बड़ी राशियां देश को प्राप्त हो रही थी। एक बारगी तो उसका असर ऐसा हुआ कि 2001–02 से 2003–04 के बीच हमारा भुगतान शेष तीन वर्षों तक लगातार फायदे में रहा। लेकिन 2004–05 और उसके बाद आर्थिक कुप्रबंधन के चलते हमारा व्यापार घाटा और ज्यादा बढ़ने लगा।

जहां वर्ष 1990–91 से 1999–00 तक 10 वर्षों में कुल व्यापार घाटा 103.56 अरब डालर और भुगतान घाटा मात्र 43.68 अरब डालर ही रहा, 2004–05 से 2012–13 के बीच 9 वर्षों में ही हमारा व्यापार घाटा 988 अरब डालर और भुगतान घाटा 337 अरब डालर तक पहुंच गया। यानि 1990 के दशक में भुगतान घाटा औसत 4.4 अरब डालर वार्षिक रहा। जबकि 2004–05 के बाद के 9 वर्षों में यह औसत 8.5 गुणा बढ़कर 37.4 अरब डालर हो गया। हालांकि सॉफ्टवेयर और अनिवासी भारतीयों से विदेशी मुद्रा की प्राप्तियां बदस्तूर बढ़ती रही, लेकिन बढ़ते व्यापार घाटे के लिए वे नाकाफी सिद्ध होने लगी।

अभी भी भ्रमित है
सरकारी नीति की दिशा

आज सरकार रुपए को थामने के लिए एक ही तरीका सुझा रही है और वो है विदेशी निवेश को बढ़ाना। गौरतलब है कि सरकार पिछले 20 वर्षों से लाल गलीचे बिछा कर विदेशी निवेश का स्वागत कर रही है। थोड़े ही समय में विदेशी निवेश इतने बढ़ जाएंगे कि हमारे विदेशी मुद्रा के संकट का समाधान हो जाएगा, इसकी उम्मीद करना समझदारी का काम नहीं है। ऐसे में सरकार के पास एक ही विकल्प है कि वो विदेशी बाजार से और ज्यादा ऋण उठाए। इसका संकेत वित्त मंत्री अपने बजट भाषण में पहले ही दे चुके हैं। बढ़ते विदेशी मुद्रा संकट और विदेशी ऋण की मजबूरियां देश की रेटिंग को और ज्यादा गिरा सकती हैं, जिसके चलते देश पर ब्याज का बोझ और बढ़ सकता है।

पिछले तीन वर्षों में देश पर कर्ज भी भारी मात्रा में बढ़ा और जो कर्ज वर्ष 2009 में 224.5 अरब डालर था, दिसम्बर 2012 तक 374 अरब डालर तक पहुंच गया। इसमें वो कर्ज शामिल नहीं है, जो हमारी कंपनियों ने अन्य देशों में ले रखे हैं।

गौरतलब है कि वर्ष 2011–12 में हमारे विदेशी कर्ज पर ऋण और मूल की अदायगी का बोझ 31.5 अरब डालर रहा था। विदेशी निवेशक भी विदेशी मुद्रा बाहर ले जाने में पीछे नहीं हैं। वर्ष 2011–12 में विदेशी निवेशकों द्वारा ब्याज, डिवीडेंट, रॉयल्टी के रूप में 26 अरब डालर विदेशों को अंतरित कर दिए गए। ऐसे में देश भयंकर विदेशी मुद्रा संकट की ओर आगे बढ़ रहा है। निर्यातों को बढ़ाने के सभी प्रयास असफल होते दिखाई दे रहे हैं, जबकि आयतों की बढ़ने की गति और तेज होती जा रही है। आज जरूरत इस बात की है कि सरकार उपभोक्ता वस्तुओं, टेलीकॉम, पावर प्लांट और अन्य परियोजना वस्तुओं (खासतौर पर चीन से) के आयातों पर पाबंदी लगाएं। सोना–चांदी के आयातों पर प्रभावी नियंत्रण लगे, विदेशी संस्थागत निवेशकों के निवेशों पर तीन साल का लॉक–इन पीरियड का प्रावधान लागू किया जाए और विदेशी कंपनियों द्वारा अनधिकृत रूप से किए जा रहे विदेशी मुद्रा अंतरणों पर प्रभावी रोक लगाई जाए। यदि सरकार ने ये कदम जल्दी नहीं उठाए तो देश भयंकर विदेशी मुद्रा संकट में फंस सकता है।❑

प्रत्यक्ष विदेशी पूंजी निवेशः देश की गुलामी की पहली सीढ़ी

एक लोक कल्याणकारी लोकतांत्रिक राष्ट्र में सहयोगी दलों की रजामंदी न लेकर गठबंधित सरकार का ऐसे अहम् मामले में अदूरदर्शी फैसला लेना बेबुनियाद है। साथ ही प्रधानमंत्री जी की बयानबाजी से स्पष्ट था कि उन्हें विरोधी दल के तर्क और द्वंद्व की कोई कद्र थी ही नहीं। कहा जा सकता है कि यह लोकतंत्र के वजूद और लोकतांत्रिक व्यवस्था पर करारी चोट है। जहां नेता लोग राजनीति की आड़ में सर्वशः स्वार्थ में लीन हैं, वहां भला आम जनता क्या कर सकती है?

■ डॉ. धीरेन्द्र नन्द

यह बड़ी खेद की बात है कि आज भारत की लोकतांत्रिक सरकार लोक–कल्याण और जनता की संवेदना को नजरदांज कर रही है। केंद्र में यूपीए सरकार ने व्यापार के क्षेत्र में 51 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को अहमियत दी है। इस प्रकार पेंशन, बीमा, विमान यातायात के क्षेत्र में 49 प्रतिशत, प्रसारण के क्षेत्र में 74 प्रतिशत और खुदरा व्यापार के सिंगल ब्रांड के क्षेत्र में 100 प्रतिशत विदेशी पूंजी निवेश को इजाजत दी गयी है। साथ ही पूरे मुनाफे में चल रहे चार राष्ट्रीयत उद्योगों (नालकों से 12.15 प्रतिशत, ऑयल इंडिया से 10 प्रतिशत, हिंदुस्तान कॉपर लिमिटेड से 9.59 प्रतिशत और एस.एस.टी.सी से 9. 33 प्रतिशत) से पूंजी प्रत्याह्रत कर दिया गया है। पिछले तीन सालों में भारत की अर्थनीति कमजोर हो गयी है और आर्थिक विकास घटने लगा है। तीन साल पहले भारत के आर्थिक विकास का हाल 9 प्रतिशत था जबकि अब यह घटकर 5.5 प्रतिशत हो गया है। देश के आर्थिक विकास के नाम पर किसान, गरीब, मजदूर और आम जनता के लिए यह अंधों को हाथी दिखाने जैसे है। विदेशियों को अग्राधिकार दिलाकर देशवासियों को मौत की खाई में धकेलने वाली सरकार हरगिज अपने को राष्ट्रप्रेमी, आम जनता के कल्याणकारी होने का दावा करना जायज नहीं है।

अगर विदेशी कंपनियां 122 करोड़ जनताओं के लिए हर दिन खाद्य पदार्थो

बेचेंगी तो इससे कंपनियों को ढेर सारा मुनाफा मिलेगा। इसलिए वालमार्ट, टेस्को, केयरफर, प्रुडेनसियल, फाइनानसियल जैसे व्यापार संस्थान सन 2002 से भारतवर्ष के बाजार में घुसने के लिए कोशिश करते आ रहे थे। कुछ ही दिनों पहले अमेरिका के राष्ट्रपति बराक ओबामा भारत की अर्थनीति के उदारीकरण के लिए खुलमखुला बयानबाजी किए थे। इसके असर से और विदेशी कंपनियों के दबाव में आकर मनमोहन सिंह सरकार खुदरा व्यापार में मल्टी ब्रांड के क्षेत्र में 51 प्रतिशत और सिंगल ब्रांड के क्षेत्र में 100 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी पूंजी निवेश को स्वीकृति दिलाकर कंपनियों के प्रयत्न को कामयाब करवायी। पूंजी निवेश का मतलब व्यापार से फायदा उठाना। सबका मतलब शोषण करना और ठगना। इष्ट इंडिया कंपनी हो या पास्को, वेदांत, रिलायंस, वालमार्ट इन सबका मकसद एक है। सबका मतलब सिर्फ अपने मुनाफे

से है।

जहां करोड़ों लोग खुदरा व्यापार से रोजी–रोटी का इंतजाम करते हैं वहां विदेशी कंपनियों को इस क्षेत्र में घुसने का मौका दिलाकर अपनों की कमाई पर लात मारना दुख की बात है। खुदरा क्षेत्र में विश्व में अपनी काया विस्तार करने वाली वालमार्ट जैसी विदेशी कंपनियां दो–एक सालों में भारत में अपनी पूंजी से बड़ी–बड़ी मंडी बसाएंगी। वे प्रतियोगिता के नाम पर पहले किसानों से ज्यादा कीमत पर सामान खरीदकर और स्थानीय लोगों से कम कीमत में बेचकर थोड़े घाटे में रहने के बावजूद पूरे बाजार पर कब्जा कर लेगी। कुछ ही सालों में प्रतियोगिता के नाम पर स्थानीय प्रतियोगी खुदरा व्यापारियों को उनके व्यापार से संपूर्ण हटाकर बाजार में एकाधिकार व्यापार करके मनचाही कीमत बढ़ाकर शोषण करेंगी।

विदेशी कंपनियों के व्यवसायिक दूसरे खर्च जैसे – इमारतों का किराया, शीत–ताप व्यवस्था का खच्र, यातायात का खर्च, प्रचार–प्रसार का खर्चा, चौपट हुई चीजों का खर्चा निवेश पूंजी का ब्याज लाभांश आदि सामान खरीदते समय खरीददार देने के लिए मजबूर होता है। कंपनियां स्थानीय क्षेत्रों में एक ही बार में सारी चीजें खरीद लेने के कारण हमारे देश के गांवों और नगरों के चार करोड़ खुदरा व्यापारी तथा कर्मचारी अपने पेशे से हाथ धो बैठेंगे। नतीजा यही निकलेगा कि उनके भरोसे रहने वाले 20 करोड़ लोगों के परिवारों की हानि होगी। अपने ही देश में उत्पादित कई चीजों की कीमत आसमान छुएगी। नयी सुविधा की चाह रखने वाले स्थानीय लोग अवश्यक पूंजी और बुद्धि के अभाव में नौकर तथा आम ग्राहक ठगी और शोषण का शिकार बनेंगे।

भारत के 65 प्रतिशत लोग खेती पर निर्भर है। इनमें से 80 प्रतिशत लोग ही एकड़ से कम खेतों के मालिक हैं जो नाममात्र किसान कहलाते हैं। खेत ही कार्य संस्थान का पहला जरिया है। इसके बाद आता है – खुदरा व्यापार। रिटेल मार्केट जैसे संवेदनशील क्षेत्र को विदेशियों के हवाले करने का नतीजा यह निकलेगा कि भारत के किसान, उत्पादन करने वाले, और गरीबी सीमारेखा के नीचे रहने वाले लोगों का नुकसान तो होगा साथ ही विदेशी कंपनियां शोषण करने लगेंगी। स्थानीय किसान भारी भरकम हजार एकड़ उपजाऊ खेत कंपनियां के हाथों में लगेंगे। कंपनियां देशी बीज के बदले जेनेटिक मॉडिफायड बीज उपयोग में लाएंगी। इस कारण देशी बीज मिटने लगेंगे। देश में बेरोजगारी की समस्या बढ़ने लगेगी और तो और लोग मजबूरन अमयार्दित कार्यों में लिप्त होंगे।

''हमारे राजनेताओं की दूरदर्शिता ही देश के विकास में बाधा डालती है। इन्हें देश और जनता की फिक्र नही है। कई बार अखबारों में यह खबर भी प्रकाशित हुई कि विदेशी दवा कंपनी डीओडब्ल्यू में एक कीटनाशक दवा हमारे देश में बेचने की अनुमति लेने के लिए एक हजार करोड़ से ज्यादा रुपए भारत के अमलातंत्र को रिश्वत के तौर पर दी गई है। आश्चर्य इस बात की है कि केंद्र सरकार ने इस पर एतराज नहीं जताया।''

केंद्र सरकार का यह मानना है कि खुदरा व्यापार में विदेशी पूंजी निवेश के कारण किसानों को अपनी उपज की ज्यादा कीमत मिलेगी। खरीददार कम कीमत से चीजें खरीदेंगे और ज्यादा से ज्यादा लोग कामकाज में लगेंगे। मतलब यही निकला कि अब सरकार नहीं बल्कि विदेशी कंपनियां हमारे देश की तरक्की करवाएंगी। केंद्र सरकार लाखों करोड़ों का खर्चा करके किसानों के विकास में असमर्थ रही जबकि खुदरा सरकार का विदेशी व्यापारियों के जरिए किसानों के विकास की बात करना हास्यपद लगता है।

खुदरा फुटकर व्यापार के क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी पूंजी निवेश को अग्राधिकार देने के सरकार का यह तर्क रहा है कि वैट मार्केट में सब्जी, फल, मछली, अंडे, दूध आदि के व्यापार के लिए विदेशियों के व्यवस्थित शीतल भंडार से अपचय रोकने पर देश की समृद्धि होगी। देश का वैट मार्केट कुल फुटकर व्यापार का सिर्फ 9 प्रतिशत है। वैट मार्केट में शीतल भंडार न हो तो समुदाय का लगभग 15–20 प्रतिशत नुकसान होता है जो कि कुल फुटकर व्यापार का 1.8 प्रतिशत (9 का 20 प्रतिशत) है। अतः मात्र 1.8 प्रतिशत अपचय रोकने के लिए देश के सम्पूर्ण रिटेल मार्केट को विदेशियों के हाथों सौंप देना कहां तक उचित है? भारत के पन्द्रह लाख करोड़ों रुपये के सालाना बजट में किसानों के खातिर शीतल भंडार मुहैया कराने के लिए मात्र 7,867 करोड़ खर्च करने में क्या हर्ज है? विदेशियों द्वारा चीजों की गुणवत्ता के नाम पर किसानों की उपज को ठुकराने से कितना नुकसान होगा इसका अंदाजा नहीं लगाया जा

सकता। जिस सरकार के शासन काल में 1 लाख 75 हजार करोड़ों रुपए का टू–जी स्पेक्ट्रम भ्रष्टाचार, 1 लाख 83 हजार करोड़ों का कोलगेट भ्रष्टाचार होता है सरकार स्वेच्छा से मात्र 7,867 करोड़ रुपए का खर्चा करें तो देशभर शीतल भंडार मुहैया कराके अपचय को रोका जा सकता है।

अब देश के 10 लाख लोगों से ज्यादा तादाद के 53 शहरों में सरकार ने व्यापार के क्षेत्र में परीक्षण के तौर पर विदेशी पूंजी निवेश को अनुमति दे दी है। परंतु हमें जानना चाहिए कि इन 53 शहरों में देश के 65 प्रतिशत फुटकर व्यापार होता है। इसके बावजूद विदेशी कपंनियां सरकार को तरह–तरह की लालच दिखाकर हमारे देश के छोटे–बड़े प्रायः सारे शहरों में अपना व्यापार फैलाने में सक्षम होंगी। विश्व के जिन देशों में ऐसी कंपनियां फुटकर व्यापार में पूंजी निवेश कर दाखिल हुई हैं, उन देशों की आर्थिक स्थिति डांवांडोल हो गई है। जब अमरीका में वालमार्ट के विरोध में प्रदर्शन हो रहा था ठीक इसके भरत सरकार में वालमार्ट का स्वागत किया गया। लगभग 10 हजार लोग अपनी गरीबी की वजह वालमार्ट को दर्शाकर लांस आंजेल्स में पिछले साल जून के महीने में इसके विरोध में प्रदर्शन किए।

अमरीका में एक सर्वे के अनुसार जहां–जहां वालमार्ट ने दुकान खोल रखी है वहां बेरोजगारी बढ़ने लगी, छोटी–मोटी दुकानें बंद हो गयीं, मध्यमवर्ग को कमजोर कर डाला और शहर की आर्थिक व्यवस्था को तहस–नहस कर डाला। वालमार्ट के सुपर मार्केट की दुकान 1,08,000 वर्गफुट की है और हर दुकान में 225 कर्मचारी नियुक्त किया गया। 1,300 भारतीय दुकानों के बदले एक मल्टीब्रांड दुकान खुलेगी यानी 3675 कर्मचारियों के बदले 225 कर्मचारियों को नियुक्ति मिलेगी। जाहिर सी बात है कि हमारे देश में वालमार्ट के मालिक लाख–दो लाख नौकरों से जब अपना व्यापार आगे बढ़ाएंगे तब छोटी–मोटी दुकानों से रोजी–रोटी का इंतजाम करने वाले हमारे व्यापारियों की कमाई ठप हो जाएगी। पिछले पचास सालों से सरकारी सहायता से चल रहे क्षुद्र और मध्यम शिल्प संस्थानों को हानि होगी। अब सरकार की कमजोर आर्थिक नीति के कारण वालमार्ट भारत के बाजार पर हावी होकर करोड़ों भारतीयों को दुःख–दर्द की खाई में धकेलेगा।

''प्रत्यक्ष विदेशी पूंजी निवेश हमारे लिए जहर जैसा है। इसके असर से न सिर्फ देश की जनता का नुकसान होगा बल्कि सरकार का भी पतन होगा। विदेशी लोग फिर भारतवर्ष पर राज करेंगे। निसंदेह हमारी आने वाली पीढ़ी अपने देश को आजादी दिलाने के लिए एक और आजादी की लड़ाई लड़ेगी।''

एक लोक कल्याणकारी लोकतांत्रिक राष्ट्र में सहयोगी दलों की रजामंदी न लेकर गठबंधित सरकार का ऐसे अहम मामले में अदूरदर्शी फैसला लेना बेबुनियाद है। साथ ही प्रधानमंत्री जी की बयानबाजी से स्पष्ट था कि उन्हें विरोधी दल के तर्क और द्वंद्व की कोई कद्र थी ही नहीं। कहा जा सकता है कि यह लोकतंत्र के वजूद और लोकतांत्रिक व्यवस्था पर करारी चोट है। जहां नेता लोग राजनीति की आड़ में सर्वशः स्वार्थ में लीन हैं, वहां भला आम जनता क्या कर सकती है?

हमारे राजनेताओं की दूरदर्शिता ही देश के विकास में बाधा डालती है। इन्हें देश और जनता की फिक्र नही है। कई बार अखबारों में यह खबर भी प्रकाशित हुई कि विदेशी दवा कंपनी डीओडब्ल्यू में एक कीटनाशक दवा हमारे देश में बेचने की अनुमति लेने के लिए एक हजार करोड़ से ज्यादा रुपए भारत के अमलातंत्र को रिश्वत के तौर पर दी गई है। आश्चर्य इस बात की है कि केंद्र सरकार ने इस पर एतराज नहीं जताया। इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि अमरीकी सरकार को करोड़ों डॉलर चंदा दे रही वालमार्ट कंपनी हमारे देश में व्यावसायिक स्वीकृति के लिए कितने हजार करोड़ रुपए खर्च की होगी।

उपभोक्तावाद को बढ़ावा देने के कारण देश में संग्रह की मानसिकता कम होगी और जमा राशि घटेंगी। इस कारण देश की समृद्धि न होकर अर्थनीति बन जाएगी। फुटकर व्यापार नगरों और ग्रामीण उन्नयन योजनाओं में विदेशी पूंजी निवेश पूर्णतया बंद करने के साथ–साथ आयात–निर्यात के क्षेत्र में विदेशी आर्थिक कारोबार को बराबर का दर्जा दिलाने पर ही भारतीय रुपए का हो रहा अवमूल्यायन रोका जा सकता है तथा देश को आर्थिक आपदा से मुक्त किया जा सकता है। इसलिए फुटकर व्यापार, पेंशन, बीमा–योजना, विमान यातायात, दूरदर्शन प्रसारण आदि के सेवा के क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी पूंजी निवेश हमारे लिए जहर जैसा है। इसके असर से न सिर्फ देश की जनता का नुकसान होगा बल्कि सरकार का भी पतन होगा। विदेशी लोग फिर भारतवर्ष पर राज करेंगे। निसंदेह हमारी आने पीढ़ी अपने देश को आजादी दिलाने के लिए एक और आजादी की लड़ाई लड़ेगी। ❑

दृष्टिकोण

विदेशी कर्ज के जाल में अर्थव्यवस्था

वर्ष 2013–14 का बजट पेश करते हुए वित्त मंत्री पी चिदंबरम ने भुगतान घाटे के बढ़ने पर चिंता व्यक्त की है। प्रधानमंत्री और रिजर्व बैंक भी ऐसी चिंता जता चुके हैं। यह सच है कि 2004–05 से हमारा व्यापार घाटा कम होने का नाम ही नहीं ले रहा। बीती सदी के नब्बे के दशक में भुगतान घाटा औसत 4.4 अरब डॉलर वार्षिक था, जबकि 2004–05 के बाद के आठ वर्षों में यह औसत साढ़े छह गुना बढ़कर 28.5 अरब डॉलर हो गया।

■ स्वदेशी संवाद

बीती सदी के आखिरी दशक में शुरू की गई आर्थिक नीति के पक्ष में एक बड़ा तर्क यह था कि बढ़ते व्यापार घाटे और भुगतान असंतुलन के कारण देश पर विदेशी कर्ज का भार बढ़ रहा था। वैसे में यह तर्क दिया गया कि उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण के रास्ते पर चलकर हम देश को ऋणमुक्त बना सकते हैं। तब कहा गया कि हमें अपने आयात पर अवरोध समाप्त करने होंगे और विदेशी निवेश के लिए रास्ते चौड़े करने होंगे।

डब्ल्यू.टी.ओ. के समझौतों के अंतर्गत आयातों पर लगे टैरिफ और गैरटैरिफ नियंत्रण हटा दिए गए। नतीजतन देश में आयात बढ़ने लगा, निर्यात में भी वृद्धि हुई, लेकिन तुलनात्मक रूप से आयात ज्यादा बढ़े। ऐसे में, हमारा व्यापार घाटा बढ़ता गया। पर इस दौरान भारत ने सॉफ्टवेयर के क्षेत्र में भारी प्रगति करनी शुरू की। उसी समय अनिवासी भारतीयों ने पहले से भी अधिक तादाद में विदेशी मुद्रा देश में भेजी। इस कारण व्यापार घाटा बहुत अधिक होने के बावजूद देश का भुगतान घाटा ज्यादा नहीं था। वर्ष 2001–2004 तक तो भुगतान अतिरेक की स्थिति आई। आजादी के बाद ऐसा मौका लगातार तीन वर्षों तक पहली बार आया।

''लगातार बढ़ता हुआ विदेशी कर्ज भुगतान घाटे की स्थिति को और मुश्किल बना रहा है। व्यापार घाटे का बढ़ना एक प्रमुख कारण तो है पर विदेशी ऋणों की वापसी और ब्याज अदायगी इस समस्या को और जटिल बना रही है।''

वर्ष 2013–14 का बजट पेश करते हुए वित्त मंत्री पी चिदंबरम ने भुगतान घाटे के बढ़ने पर चिंता व्यक्त की है। प्रधानमंत्री और रिजर्व बैंक भी ऐसी चिंता जता चुके हैं। यह सच है कि 2004–05 से हमारा व्यापार घाटा कम होने का नाम ही नहीं ले रहा। बीती सदी के नब्बे के दशक में भुगतान घाटा औसत 4.4 अरब डॉलर वार्षिक था, जबकि 2004–05 के बाद के आठ वर्षों में यह औसत साढ़े छह गुना बढ़कर 28.5 अरब डॉलर हो गया। वर्ष 2008 में हमारे विदेशी मुद्रा भंडार तीन वर्षों के आयातों के लिए पर्याप्त थे। आज आयात की मात्रा बढ़ने के कारण हमारे विदेशी मुद्रा भंडार अब मात्र छह महीने के आयात के लिए ही पर्याप्त हैं। पिछले तीन वर्षों में देश पर कर्ज भी भारी मात्रा में बढ़ा। जो कर्ज मार्च, 2009 में 224.5 अरब डॉलर था, वह दिसंबर, 2012 में 374 अरब डॉलर तक पहुंच गया। इसमें वह कर्ज शामिल नहीं है, जो हमारी कंपनियों ने अन्य देशों में ले रखे हैं।

लगातार बढ़ता हुआ विदेशी कर्ज भुगतान घाटे की स्थिति को और मुश्किल

बना रहा है। व्यापार घाटे का बढ़ना एक प्रमुख कारण तो है, विदेशी ऋणों की वापसी और ब्याज अदायगी इस समस्या को और जटिल बना रही है। आंकड़ों के अनुसार, वर्ष 2011–12 में हमारे विदेशी ऋण के मूल और ब्याज अदायगी में 31. 5 अरब डॉलर चले गए।

भुगतान घाटा बढ़ने का एक प्रमुख कारण प्रत्यक्ष और पोर्टफोलियो विदेशी निवेश भी है। हालांकि हमारे वित्त मंत्री बढ़ते भुगतान घाटे से बचने के उपायों में विदेशी निवेश को बढ़ाने का तर्क देते हैं, लेकिन बढ़ता विदेशी निवेश भी देश के भुगतान घाटे को बढ़ा रहा है। वर्ष 2011–12 में कुल प्रत्यक्ष विदेशी निवेश 22 अरब डॉलर का था, जबकि पूर्व में आए विदेशी निवेश पर विदेशियों द्वारा कमाए ब्याज, लाभांश, रॉयल्टी और अन्य प्रकार की आमदनियों द्वारा 26 अरब डॉलर विदेशों में अंतरित हुए। यानी प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से जितनी प्राप्ति हुई, उससे ज्यादा उस पर कमाई कर विदेशी अपने देशों में ले गए।

इसी प्रकार भारतीय कंपनियों द्वारा विदेशों में लिए गए ऋणों पर भी मूल और ब्याज अदायगी के लिए भारी विदेशी मुद्रा की जरूरत पड़ती है, जो हमारे भुगतान घाटे को और बढ़ाती है। देश में वर्ष 2012–13 तक कुल 186.1 अरब डॉलर का पोर्टफोलियो निवेश भी आया। वर्ष 2008 में अमेरिकी आर्थिक संकट के चलते निवेशकों ने भारी राशि विदेशों में भेजनी शुरू कर दी थी, जिसके कारण हमारा पोर्टफोलियो निवेश उस वर्ष ऋणात्मक हो गया था। पोर्टफोलियो निवेश पर लाभ विदेशी मुद्रा के रूप में विदेश भेजे जाते हैं। यह भी भुगतान घाटा बढ़ाता है।

जब किसी देश पर कर्ज इतना बढ़ जाता है कि उसकी मूल और ब्याज अदायगी के लिए और अधिक ऋण लेना पड़ता है, तो उसको कर्ज का भंवर जाल कहते हैं। आज जरूरत इस बात की है कि हमारे नीति–निर्माता स्थिति की गंभीरता को समझें और देश को कर्ज के भंवर जाल में डूबने से बचाए। ❑

:: सदस्यता संबंधी सूचना ::

मान्यवर,,

स्वदेशी पत्रिका आज देश में चल रहे स्वदेशी आंदोलनों का स्थापित प्रतीक बन चुकी है। पिछले कई वर्षों से स्वदेशी पत्रिका ने असंगत एवं एकतरफा वैश्वीकरण, जनविरोधी आर्थिक उदारीकरण के विरोध एवं वैकल्पिक और रचनात्मक स्वदेशी आंदोलन के पक्ष में एक सक्रिय प्रहरी के नाते हमेशा आपको जागरूक बनाया है एवं आपसे संवाद स्थापित किया है। विगत कालखंड में इन सभी मुद्दों पर हमें आप जैसे सजग पाठकों का अपेक्षित सहयोग भी मिलता रहा है और भविष्य में भी मिलेगा ऐसा, विश्वास है।

आपसे आग्रह है कि स्वदेशी पत्रिका की आपकी सदस्यता अवधि यदि समाप्त हो गई हो तो कृपया पिछले समय से आगामी वर्ष तक की राशि धनादेश (मनीआर्डर), चेक एवं मांग पत्र (डिमांड ड्राफ्ट) के माध्यम से शीघ्र भेजने की कृपा करें। पत्रिका के लिफाफे के उपर चिपकाए गए पते की प्रथम पंक्ति में सदस्यता अवधि अंकित है। आप अपनी सदस्यता राशि ''स्वदेशी पत्रिका'' के नाम पत्रिका के कार्यालय के पते पर भेज सकते हैं। सदस्यता अद्यतन न हो पाने की स्थिति में वित्तीय कारणों से पत्रिका आगे जारी रखना कठिन होगा।

सदस्यता शुल्क निम्न प्रकार है :–

स्वदेशी पत्रिका	वार्षिक	आजीवन
हिन्दी	150 रुपए	1500/– रुपए
अंग्रेजी	150 रुपए	1500/– रुपए

हमें आपका सहयोग स्वदेशी आंदोलन को राष्ट्रव्यापी एवं जनोन्मुखी बनाने में प्रमुख भूमिका निभाएगा। कृपया स्वदेशी पत्रिका स्वयं भी पढ़ें एवं अन्य को भी पढ़ने के लिए प्रेरित करें। पत्रिका के संबंध में अपना निष्पक्ष विचार हमें अवश्य भेजें।

पता : **स्वदेशी पत्रिका कार्यालय, 'धर्मक्षेत्र' शिव शक्ति मंदिर, सैक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली–22**

मनमोहन का सपना टूटा

भारत निर्माण का खोखला दावा

अर्थव्यवस्था में गिरावट की ताजा तस्वीर यह बताती है कि केन्द्र सरकार की ओर से जैसे कदम उठाये जाने चाहिए थे वैसे नहीं उठाये गये और अब फिर सरकार मान रही है कि आने वाले समय में स्थितियां बदलेंगी। लेकिन सरकार जिस तरह के घपले–घोटालों में डूबी है उससे उम्मीद की कोई किरण नहीं दिखाई दे रही है. . .दरअसल, अपार संसाधनों वाले इस देश की सबसे बड़ी समस्या राजनीतिक और प्रशासनिक भ्रष्टाचार है जिसे उदारवादी नीतियों के कारण और बढ़ावा मिला है।

■ निरंकार सिंह

देश के लड़खड़ाते अर्थतंत्र के लक्षण अब साफ दिखाई देने लगे हैं। आर्थिक हालात के ताजे आंकड़े देश की दशा की भयावह तस्वीर पेश करते है। देश की आर्थिक विकास दर 10 साल के न्यूनतम स्तर पर पहुँच गयी है। डालर के मुकाबले में रूपये में लगातार गिरावट जारी है। उधर पानी–बिजली के मोर्चे पर पूरे देश में त्राहि–त्राहि मची हुई है, फिर भी यूपीए की सरकार भारत निर्माण का सपना दिखा रही है।

बारहवीं पंचवर्षीय योजना के मसौदे को स्वीकार करते हुए प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने कहा था कि उनकी तत्काल प्राथमिकता वर्ष की दूसरी छमाही के दौरान अर्थव्यवस्था में उछाल लाने की है। इसके बाद इस योजना अवधि के अन्त में विकास की गति नौ फीसदी बढ़ाने की थी। इससे बारहवीं योजना में लक्षित दर 8.2 फीसदी हासिल हो जायेगी। लेकिन तमाम कोशिशों के बावजूद बीते वित्त वर्ष 2012–13 की आर्थिक विकास दर पांच फीसदी से ऊपर नहीं पहुंच सकी।

अर्थव्यवस्था में गिरावट की ताजा तस्वीर यह बताती है कि केन्द्र सरकार की ओर से जैसे कदम उठाये जाने चाहिए थे वैसे नहीं उठाये गये और अब फिर सरकार मान रही है कि आने वाले समय में स्थितियां बदलेंगी। लेकिन सरकार जिस तरह के घपले–घोटालों में डूबी है उससे उम्मीद की कोई किरण नहीं दिखाई दे रही है। विशेषज्ञों के अनुसार अगर विकास दर पांच फीसद के आसपास अगले दो साल तक भी बनी रहती है तो देश में गरीबी खत्म करने की मुहिम पांच वर्ष तक पीछे जा सकती है।

योजना आयोग के आंकड़ों के अनुसार भारत की पूरी आबादी का 29.8 फीसदी गरीबी रेखा के नीचे है। इसे पूरी तरह से खत्म करने के लिए अगले दो

'देश के लड़खड़ाते अर्थतंत्र के लक्षण अब साफ दिखाई देने लगे हैं। आर्थिक हालात के ताजे आंकड़े देश की दशा की भयावह तस्वीर पेश करते है। देश की आर्थिक विकास दर दस साल के न्यूनतम स्तर पर पहुँच गयी है। डालर के मुकाबले में रूपये में लगातार गिरावट जारी है। उधर पानी–बिजली के मोर्चे पर पूरे देश में त्राहि–त्राहि मची हुई है, फिर भी यूपीए की सरकार भारत निर्माण का सपना दिखा रही है।'

हमारी सरकारें अपने ही भ्रष्टाचार के मकड़जाल में उलझी रही हैं और देश की आर्थिक और सामाजिक दशा सुधारने में असफल साबित हो रही है। चुनाव जीतने और मतदाताओं को लुभाने के लिए मनरेगा और खाद्य सुरक्षा, मुफ्त बिजली देने जैसे लोकलुभावन कार्यक्रम बनाये जाते हैं जिससे समाज की न तो दशा बदलती है और न ही उन्हें स्थायी रोजगार का कोई साधन उपलब्ध हो पाता है। आजादी के 66 सालों के बाद भी हम लाखों गांवों में पेयजल की व्यवस्था नहीं कर पाये हैं।

दशकों तक आठ से दस फीसदी की विकास दर चाहिए। रेटिंग एजेंसी क्रिसिल के प्रमुख अर्थशास्त्री डीके जोशी का कहना है कि वर्ष 2011–12 की विकास दर 6.5 फीसदी रही थी। पिछले वित्त वर्ष में यह पांच फीसदी से भी नीचे आ गयी।

चालू वित्त वर्ष 2013–14 में इस दर के साढ़े पांच फीसदी के करीब रहने की बात की जा रही है लगातार तीन वर्षों तक विकास दर बहुत कम रहने की वजह से प्रति व्यक्ति आय कम रहेगी। इससे गरीबी दूर करने के प्रयासों को भी धक्का लगेगा। वित्त मंत्रालय के पूर्व आर्थिक सलाहकार और देश के प्रमुख अर्थशास्त्री राजीव कुमार का कहना है – 'विकास दर का सीधा सम्बन्धी गरीबी से है। इस विकास दर के साथ हमें प्रति भारतीयों की आय को दोगुना करने में 25 वर्ष लग जायेंगे। अगर सात या आठ फीसदी की विकास दर हासिल की जाती है तो प्रति व्यक्ति आय सिर्फ 14 वर्षों में दोगुनी हो जायेगी। इससे तेजी से गरीबी दूर होगी।' लेकिन सरकार का यह सपना अब टूट गया है। प्रति व्यक्ति आय के मामले में भारत का स्थान पिछड़ता जा रहा है।

विश्व बैंक की ताजा रिपोर्ट बताती है कि वर्ष 2011 में भारत की प्रति व्यक्ति आय 3,468 डॉलर थी और हम 129वें स्थान पर थे। मौजूदा आर्थिक विकास दर के जरिये हम चीन (7,694 डॉलर प्रति व्यक्ति आय) के स्तर पर पहुंचने में 25 वर्ष से ज्यादा लग जायेंगे। प्राकृतिक और मानवीय संसाधनों की दृष्टि से भारत कोई पिछड़ा देश नहीं है। कई तरह की खनिज सम्पदाओं और उपजाऊ धरती के मामले में हम दुनिया के तमाम देशों की अपेक्षा समृद्ध हैं। लेकिन कामकाज और प्रबंधन के मामले में हमारी गिनती दुनिया के भ्रष्टतम देशों में होती है।

पिछले तीस सालों में प्रति व्यक्ति की आय में बढ़ोत्तरी की दृष्टि से देखा जाए तो हमारी गिनती पिछड़े देशों में होती है। इन 30 सालों के दौरान प्रति व्यक्ति आय में बढ़ोत्तरी के लिहाज से चीन अग्रणी है। उसकी प्रति व्यक्ति आय में 22.5 गुना का इजाफा हुआ है।

दूसरे स्थान पर दक्षिण कोरिया है जिसकी प्रति व्यक्ति आय का आधार सन् 1979 में ही भारत की मौजूदा स्थिति से बेहतर था। इन तीन दशकों में उसकी आय में 11 गुना का इजाफा हुआ है।

तीसरे स्थान पर है हमारा पड़ोसी मुल्क श्रीलंका, उसकी प्रति व्यक्ति आय इन तीन दशकों में 9 गुना बढ़ी है। इन तीनों देशों के बाद सात देशों का एक समूह आता है। इस समूह की प्रति व्यक्ति आय का विकास 5 अथवा 6 गुने की दर से हुआ। इसमें थाईलैंड और इण्डोनेशिया शामिल है। जिनकी आय इन सालों में क्रमशः 6.2 और 6 गुना बढ़ी। तीन अन्य महाद्वीपों की बात की जाय तो यूरोप में सबसे ज्यादा प्रदर्शन तुर्की ने किया। दक्षिण अमेरिका में चिली और अफ्रीका से मिस्र इस मामले में अग्रणी रहा। शीर्ष 10 में शामिल होने वाले अंतिम दो मुल्कों में भारत और स्पेन का नाम है। इनकी प्रति व्यक्ति आय क्रमशः 5.26 गुना और 5.1 गुना बढ़ी। ताइवान के लिए कोई आंकड़ा मौजूद नहीं है। जबकि सिंगापुर और हांगकांग का प्रदर्शन भी बहुत अच्छा रहा है। अगर इन सबको शामिल कर लिया जाए तो भारत 12वें स्थान पर आता है। ऐसे में जाहिर है कि चीन से तो हमारा कोई मुकाबला ही नहीं है।

जाहिर है कि हमारी सरकारें अपने ही भ्रष्टाचार के मकड़जाल में उलझी रही हैं और देश की आर्थिक और सामाजिक

प्राकृतिक और मानवीय संसाधनों की दृष्टि से भारत कोई पिछड़ा देश नहीं है। कई तरह की खनिज सम्पदाओं और उपजाऊ धरती के मामले में हम दुनिया के तमाम देशों की अपेक्षा समृद्ध हैं। लेकिन कामकाज और प्रबंधन के मामले में हमारी गिनती दुनिया के भ्रष्टतम देशों में होती है।

दशा सुधारने में असफल साबित हो रही है। चुनाव जीतने और मतदाताओं को लुभाने के लिए मनरेगा और खाद्य सुरक्षा, मुफ्त बिजली देने जैसे लोकलुभावन कार्यक्रम बनाये जाते हैं जिससे समाज की न तो दशा बदलती है और न ही उन्हें स्थायी रोजगार का कोई साधन उपलब्ध हो पाता है। आजादी के 66 सालों के बाद भी हम लाखों गांवों में पेयजल की व्यवस्था नहीं कर पाये हैं। जब समाज में इतनी विषमता हो कि लखपति–करोड़पति और करोड़पति अरबपति बनता जाये और करोड़ों लोगों को पानी भी नसीब न हो तो ऐसे समाज में शान्ति कैसे कायम हो सकती है। दरअसल, अपार संसाधनों वाले इस देश की सबसे बड़ी समस्या राजनीतिक और प्रशासनिक भ्रष्टाचार है जिसे उदारवादी नीतियों के कारण और बढ़ावा मिला है।

एस. एंड पी. के अनुसार भारत की गिरती आर्थिक साख के लिए सोनिया और कमजोर मनमोहन जिम्मेदार हैं। यह कांग्रेस पार्टी जहां अंदरूनी मतभेदों से भरी है वहीं संप्रग सरकार का ढांचा ही दोषपूर्ण है। कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी के पास सर्वोच्च अधिकार हैं, लेकिन वह कैबिनेट में नहीं है। जबकि बिना चुने हुए नियुक्त प्रधानमंत्री के पास राजनैतिक फैसलों के लिए आधार नहीं है। आर्थिक सुधारों पर लगे ब्रेक का जिम्मा सहयोगी दलों के तेवर और विपक्ष के असहयोगी रूख पर थोपती रही। सरकार के लिए एजेंसी की यह टिप्पणी बड़ा झटका मानी जा रही है।

एस एंड पी ने अपनी इस टिप्पणी से महज क्रेडिट पर ही नहीं बल्कि भारत की राजनीतिक स्थिति की भी रेटिंग नीचे गिरा दी है। डालर के मुकाबले लगातार

एस. एंड पी. के अनुसार भारत की गिरती आर्थिक साख के लिए सोनिया और कमजोर मनमोहन जिम्मेदार हैं। यह कांग्रेस पार्टी जहां अंदरूनी मतभेदों से भरी है वहीं संप्रग सरकार का ढांचा ही दोषपूर्ण है। कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी के पास सर्वोच्च अधिकार हैं, लेकिन वह कैबिनेट में नहीं है। जबकि बिना चुने हुए नियुक्त प्रधानमंत्री के पास राजनैतिक फैसलों के लिए आधार नहीं है।

गिर रहे रूपये और आर्थिक सुधारों पर असमंजस की स्थिति का हवाला देते हुए एजेंसी ने चेतावनी दी, अब भारत की रेटिंग खतरनाक स्थिति पर जा सकती है। सवाल राजनीतिक मंशा पर उठाया गया है।

एजेंसी के अनुसार ''सुधार रूकने के लिए विपक्ष या सहयोगी दल नही, खुद कांग्रेस और सरकार जिम्मेदार है। पार्टी के अंदर ही इसे रोका जा रहा है। पार्टी अध्यक्ष राजनीतिक रूप से मजबूत है लेकिन वह सरकार में नही है। जिसके हाथ में सरकार की लगाम है उसके पास राजनीतिक आधार और समर्थक नहीं है। निर्णायक नेतृत्व की कमी और नीतिगत फैसला लेने में अनिर्णय की छवि के कारण निवेशकों का विश्वास डगमगा गया है।''

कांग्रेस नेतृत्व को यह मानना होगा कि आर्थिक फैसलों को टालने का राजनीतिक असर भी अच्छा नहीं होगा और पार्टी की पूरी ताकत सरकार के पीछे लगानी होगी। इसके अलावा सहयोगी दलों और विपक्षियों को भी यह समझना होगा कि अब राजनीतिक वजहों से आर्थिक फैसलों को टाला नहीं जा सकता है। राजनीतिक समझौता परस्ती से देश गंभीर आर्थिक संकट में फंस जायेगा।

उदारवादी नीतियों पर प्रधानमंत्री अपने कैबिनेट सहयोगियों को भी अपने पक्ष में लाने में अक्सर अक्षम दिखाई देते हैं। जिस अर्थशास्त्री ने भारत की अर्थव्यवस्था को उदारवादी जामा पहनाया, अब उसी के नेतृत्व में इसका क्षरण ही रहा है। आज हम फिर 1991 की ही हालत में आ गये हैं।

आर्थिक सुधार और उदारीकरण की नीतियों पर बढ़े कदमों का अब पीछे नहीं लौटाया जा सकता है। इसलिए कांग्रेस नेतृत्व को यह मानना होगा कि आर्थिक फैसलों को टालने का राजनीतिक असर भी अच्छा नहीं होगा और पार्टी की पूरी ताकत सरकार के पीछे लगानी होगी। इसके अलावा सहयोगी दलों और विपक्षियों को भी यह समझना होगा कि अब राजनीतिक वजहों से आर्थिक फैसलों को टाला नहीं जा सकता है। राजनीतिक समझौता परस्ती से देश गंभीर आर्थिक संकट में फंस जायेगा। चूंकि अगले लोकसभा चुनाव भी बहुत दूर नहीं है और इस बीच कई विधानसभाओं के चुनाव भी हैं। इसलिए एकमात्र तरीका यह है कि आर्थिक मुद्दों को लड़ाई के औजार न बनाकर मिल–जुलकर काम किया जाए। इसके लिए जरूरी है कि भ्रष्टाचार पर लगाम लगाने के लिए अन्ना के जनलोकपाल जैसे कड़े कानून बनाये और लागू किये जाय। न्यायिक और प्रशासनिक सुधार की दिशा में ठोस कदम उठाये जाएं। ❑

कृषि

कृषि ऋण की बंदरबांट

वर्ष 2006 में जारी किए गए कुल ऋणों में 25 करोड़ रुपये से अधिक के ऋण की दर 54 प्रतिशत थी। वे कौन से किसान हैं जिन्हें 25 करोड़ रुपये के ऋण की जरूरत है? यही प्रमुख कारण है कि 2008 में महाराष्ट्र में दिए गए कुल कृषि ऋणों का 42 प्रतिशत मुंबई के बैंकों ने जारी किया है। 2009–10 में दिल्ली और चंडीगढ़ में दिए गए कृषि ऋण उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड और पश्चिम बंगाल को दिए गए कुल ऋणों से भी अधिक थे। इसी कारण छोटे किसान बर्बादी के कगार पर पहुंच गए हैं।

■ देविन्दर शर्मा

पिछले दिनों एक टीवी चैनल पर पूर्व रेलवे मंत्री पवन कुमार बंसल को उनके बेटे की फर्म से 15 लाख रुपये का ऋण मिलने पर चर्चा चल रही थी। एक टीवी एंकर ने पूछा, 'किसी को महज तीन प्रतिशत की दर पर ऋण कैसे मिल सकता है?' शायद वह एंकर नहीं जानता था कि वित्त मंत्री पी. चिदंबरम ने मालामाल और संसाधनों से लैस कृषि व्यापार कंपनियों को गत वित्तीय वर्ष में केवल चार प्रतिशत की दर से 6.5 लाख करोड़ रुपये का कृषि ऋण दिलाया है।

2013 का बजट पेश करते हुए पी. चिदंबरम ने घोषणा की थी कि इस साल कृषि ऋण के लिए सात लाख करों रुपये का प्रावधान रखा गया है। निश्चित तौर पर 2012–13 में कृषि क्षेत्र के लिए जारी किए गए पौने छह लाख करोड़ रुपये को देखते हुए यह ऊंची छलांग है। इससे

पहले 2011–12 में पौने पांच लाख रुपये कृषि ऋण का प्रावधान था। इससे आभास होता है कि सरकार किसान छोटे और मझौले किसानों की हमदर्द है। सन 2000 से 2010 तक कृषि ऋणों में 755 प्रतिशत की जबरदस्त वृद्धि हुई है।

एक प्रसिद्ध हिन्दी अखबार में एक चौंकाने वाली खबर प्रकाशित हुई जो हमें बताती है कि पैसा जा कहां रहा है। वित्त मंत्रालय के एक दस्तावेज के अनुसार पिछले पांच साल में कृषि ऋण में ढाई गुना बढ़ोतरी के बावजूद छोटे और सीमांत किसानों को कुल संस्थागत ऋण का छह प्रतिशत से भी कम दिया गया है। इस पर तुर्रा यह कि वित्तमंत्री से लेकर प्रधानमंत्री तक देश को यह बताते नहीं थकते कि सरकार छोटे और सीमांत किसानों के लिए कितना कुछ कर रही है। दूसरे शब्दों में कुल सात लाख करोड़ रुपये में से पचास हजार करोड़ से भी कम जरूरतमंद किसानों को मिलेगा। शेष 6.5 लाख करोड़ रुपये कृषि व्यापार कंपनियों, भंडारण निगमों और राज्य बिजली बोर्डो को चार प्रतिशत की दर पर दे दिया जाएगा। असल में यह ऋण घोटाला भारत में होने वाले तमाम घोटालों की मां है। 2–जी स्पेक्ट्रम, कोयला आवंटन और राष्ट्रमंडल खेलों में कुल घोटाले भी इस ऋण घोटाले के सामने बौने ठहरते हैं। पिछले 15 सालों में 2.90 लाख किसान आत्महत्या कर चुके हैं और 42 प्रतिशत किसान खेती छोड़ने के कगार पर हैं। इस संकट से उबारने के लिए किसानों को निम्न ब्याज दरों पर ऋण मुहैया कराने की सख्त जरूरत है, किंतु गरीब किसानों को ऋण देने के बजाय सरकार उनके नाम पर जारी राशि को बड़े उद्योगपतियों को नाममात्र की ब्याज दरों पर बांट देती है।

2007 में बैंकों द्वारा दिए गए कृषि ऋणों में छोटे किसानों की हिस्सेदारी महज 3.77 प्रतिशत थी। दूसरे शब्दों में

96.23 प्रतिशत कृषि ऋण बड़े किसानों या कृषि व्यापार कंपनियों को दे दिए गए थे। 2011–12 में पौने पांच लाख करोड़ रुपये के ऋण वितरण के लक्ष्य से भी अधिक 5,09,000 करोड़ रुपये वितरित किए गए और इसमें से महज 5.71 प्रतिशत ही छोटे किसानों को मिला।

पिछले कुछ वर्ष के दौरान यह सुनिश्चित करने के लिए कि सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक वरीयता क्षेत्र को ऋण देने के 18 प्रतिशत के लक्ष्य की पूर्ति कर सकें, सरकार ने कृषि क्षेत्र की परिभाषा का विस्तार करते हुए इसमें बैंकों द्वारा कृषि व्यापार कंपनियों को दिए जाने वाले अप्रत्यक्ष ऋणों को भी शामिल कर लिया। 2000 से पहले भी सरकार ने कृषि ऋणों में ड्रिप सिंचाई उपकरण निर्माण कंपनियों और कुछ अन्य कृषि व्यापार कंपनियों को कृषि ऋण की पात्रता सूची में शामिल कर लिया था। बाद में ग्रामीण विद्युत कंपनियों, कृषि क्लिनिकों, भंडारण निगमों, कोल्ड स्टोर और मंडी के शेड निर्माण में निवेश करने वाली कंपनियों और यहां तक कि बिचौलियों व दलालों को भी इस सूची में जोड़ दिया गया।

टाटा इंस्टीट्यूट ने एक अध्ययन में पता लगाया कि सन 2000 से 2006 के बीच प्रत्यक्ष वित्ता पोषण 17 प्रतिशत की दर से बढ़ा और अप्रत्यक्ष ऋण 32.9 प्रतिशत की चौंकाने वाली दर से। दिलचस्प आंकड़ा यह है कि 2006 में जारी किए गए कुल ऋणों में 25 करोड़ रुपये से अधिक के ऋण की दर 54 प्रतिशत थी। वे कौन से किसान हैं जिन्हें 25 करोड़ रुपये के ऋण की जरूरत है? यही प्रमुख कारण है कि 2008 में महाराष्ट्र में दिए गए कुल कृषि ऋणों का 42 प्रतिशत मुंबई के बैंकों ने जारी किया है। 2009–10 में दिल्ली और चंडीगढ़ में दिए कृषि ऋण उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड और पश्चिम बंगाल को दिए गए कुल ऋणों से भी अधिक थे। इसी कारण छोटे किसान बर्बादी के कगार पर पहुंच गए हैं। उनके सामने ऊंची ब्याज दरों पर महाजनों से ऋण लेने के अलावा कोई चारा नहीं रह गया है। इसीलिए किसानों की मौत का तांडव थमने का नाम नहीं ले रहा है।

हमें बार–बार बताया जाता है कि कृषि ऋण कृषि उत्पादन, उत्पादकता बढ़ाने और किसानों की दुर्दशा दूर करने में अहम भूमिका निभाते हैं। पिछले एक दशक में ऋणों के वितरण पर उद्योग संगठन एसोकेम के एक अध्ययन में कहा गया है कि कृषि ऋण दिशाहीनता के शिकार हैं। बैंकों द्वारा अप्रत्यक्ष ऋण जारी करने का अनुपात बुरी तरह गड़बड़ाया हुआ है। ब्याज दरों में छूट का लाभ अन्य क्षेत्रों को मिल रहा है। कृषि और फसल के आकार तथा ऋण राशि में असंतुलन है और संस्थागत ऋण के दायरे से छोटे और सीमांत किसान बाहर कर दिए गए हैं। यह नीति कृषि क्षेत्र की बड़ी समस्या बन गई है। अगर आपने एसोकेम की रिपोर्ट के अंतिम बिंदु पर गौर फरमाया हो तो इससे स्पष्ट हो जाता है कि संस्थागत ऋण प्रणाली अपने उद्देश्य में क्यों विफल है। कृषि क्षेत्र के छोटे और सीमांत किसानों को दरकिनार करके सरकार उन लोगों तक लाभ पहुंचाने में बुरी तरह विफल हो गई है, जिनके लिए यह योजना लागू की गई थी। भारत का रिजर्व बैंक इस अनियमिततता का मूकदर्शक कब तक बना रहेगा? यह क्रूर चूक है या फिर सुनियोजित कार्यक्रम?

'यह बड़ा कृषि ऋण घोटाला ऐसे समय सामने आया है जब नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक ने 2009 के बजट में 74,000 करोड़ रुपये की ऋण माफी में भारी अनियमितताओं और भ्रष्टाचार को उजागर किया है। कृषि ऋण की समूची प्रक्रिया को संदेह के घेरे में रखते हुए कैग रिपोर्ट कहती है कि करीब आठ से दस प्रतिशत यानी करीब 35.5 लाख पात्र किसानों को इस योजना का लाभ नहीं मिल पाया है जबकि लगभग इतनी ही संख्या ऐसे किसानों और बड़ी कंपनियों की है, जो इस छूट के हकदार न होने के बावजूद ऋण लेने में सफल रहे।'

यह बड़ा कृषि ऋण घोटाला ऐसे समय सामने आया है जब नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक ने 2009 के बजट में 74,000 करोड़ रुपये की ऋण माफी में भारी अनियमितताओं और भ्रष्टाचार को उजागर किया है। कृषि ऋण की समूची प्रक्रिया को संदेह के घेरे में रखते हुए कैग रिपोर्ट कहती है कि करीब आठ से दस प्रतिशत यानी करीब 35.5 लाख पात्र किसानों को इस योजना का लाभ नहीं मिल पाया है जबकि लगभग इतनी ही संख्या ऐसे किसानों और बड़ी कंपनियों की है, जो इस छूट के हकदार न होने के बावजूद ऋण लेने में सफल रहे। बड़ी संख्या में कुपात्र किसानों ने ऋण चुकाने की जहमत भी नहीं उठाई।

असलियत में, धनी और ताकतवर कंपनियां छोटे और सीमांत किसानों के लिए लागू कृषि ऋण योजना को दुह रही हैं। भारतीय रिजर्व बैंक, नेशनल बैंक ऑफ एग्रीकल्चर एण्ड रूरल डेवलपमेंट तथा वित्ता मंत्रालय भारत के संभवतः सबसे बड़े घोटाले में सहयोग दे रहे हैं। ❑

पालिसी पैरालिसिस का कारण

जनता के सामने हमारे सांसद एक विजन रखने में नाकामयाब हैं। सरकार की अमीरों एवं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के माध्यम से देश का विकास हासिल करने की पालिसी पर आम सहमति नहीं है। सरकार के द्वारा किन्हीं विशेष वर्गों के द्वारा देश के संसाधनों को दोहन करने का समर्थन किया जा रहा है।

■ डॉ. भरत झुनझुनवाला

वैश्विक रेटिंग ऐजेंसियों द्वारा भारत सरकार को निरंतर चेतावनी दी जा रही है कि आर्थिक सुधारों की गति में तेजी न आने की स्थित में भारत की रेटिंग को गिराया जा सकता है। वर्तमान में भारत की रेटिंग न्यूनतम इनवेस्टमेंट ग्रेड पर है। इससे गिरने पर भारत की रेटिंग 'जंक' यानि कूड़े बराबर हो जायेगी। ऐसा होने पर विदेशी निवेशकों के पलायन की संभावना बनेगी। भारतीय उद्यमियों के लिये विदेशों से ऋण लेना भी कठिन हो जायेगा।

लेकिन आर्थिक सुधारों को आगे बढ़ाने पर देश में आम सहमति का नितांत अभाव दिख रहा है। जनता उद्वेलित है। नेताओं, अफसरों एवं उद्यमियों द्वारा वह देश के संसाधनों को लुटते हुये देख रही है। आर्थिक सुधारों के लागू होने के बाद इस लूट में विशेष वृद्धि हुयी है। अतः आर्थिक सुधारों को बढ़ाने पर आम जनता को तनिक भी उत्साह नहीं है। हम कुएं और खाई के बीच फंस गये हैं। आर्थिक सुधारों को स्थगित करते हैं तो देश की रेटिंग गड़बड़ाती है और आर्थिक विकास बाधित होता है। इसके विपरीत आर्थिक सुधारों को गति देते हैं तो देश की जनता उद्वेलित होती है, राजनैतिक और सामाजिक अस्थिरता बढ़ती है और अंततः आर्थिक विकास बाधित होता है। देश की सरकार पालिसी पैरालिसिस में पड़ी हुयी है चूंकि इस परिस्थिति में उसे कोई दिशा नहीं सूझ रही है।

पार्लियामेंट का मुख्य कार्य है जनता के विभिन्न विचारों के मध्य समन्वय स्थापित करना। जैसे वर्कर चाहता है कि ऊंचे वेतन हों और उद्यमी चाहता है कि वेतन न्यून हों तो पार्लियामेंट कानून बनाकर वेतन निर्धारित कर देती है। दोनों के मध्य विवाद समाप्त हो जाता है। मेरा आकलन है कि वर्तमान समय में पार्लियामेंट भटक गया है। जनता के विभिन्न मतों के बीच समन्वय करने और एकमत स्थापित करने के स्थान पर पार्लियामेंट का उद्देश्य वर्ग विशेष के हितों को आगे बढ़ाना हो गया है। इस परिप्रेक्ष्य में पार्लियामेंट के सुचारू रूप से कार्य करने के सिद्धान्तों पर दृष्टि डालने की जरूरत है।

लोकतंत्र का एक मूल सिद्धांत पुनर्वितरण का है। हार्वड यूनिवर्सिटी के जेम्स राबिन्सन एक पर्चे में बताते हैं कि पश्चिमी देशों में लोकतंत्र की स्थापना के साथ–साथ पुनर्वितरण कार्यक्रम लागू किये गये। भारत के संविधान में भी जनता के कल्याण को ही सरकार का प्रमुख उद्देश्य माना गया है। परन्तु भारत की जनता का दुर्भाग्य है कि सरकार की चाल इसके विपरीत दिखती है। वर्तमान सरकार की मूल पालिसी कार्पोरेट घरानों और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हित में देश को चलाने की है जैसा कि 2जी स्पेक्ट्रम तथा कोलगेट विवादों से दिखता है। राइट टू फूड जैसे कानून से सरकार अपने इस चरित्र पर चादर डालने मात्र का प्रयास कर रही है। सरकार की इस अमीर परक नीति पर आम सहमति नहीं बन पा रही है। पार्लियामेंट में जो बिखराव है वह जनता के मूल असंतोष का प्रतिबिम्ब मात्र है। जनता का कहना है कि वर्तमान पालिसी

के लागू होने से अच्छा है कि सरकार कोमा में चली जाए।

प्रिंसटन यूनिवर्सिटी के एडम मोरोविट्ज एक पर्चे में बताते हैं कि पार्लियामेंट के सुचारू रूप से चलने के लिये जरूरी है कि सत्ता एवं विपक्ष के बीच एक साझा विजन हो। जैसे नेहरू एवं लोहिया के बीच साझा विजन था कि समता परक एवं समृद्ध देश बनाना चाहते हैं। इस विजन को कैसे हासिल किया जाये इस पर चर्चा होती थी। अथवा जैसे पार्टनरों के बीच साझा विजन हो कि दुकान को बढ़ाना है तो चर्चा से सहमति बनाई जा सकती है। दो बड़े शोरूम खोले जाएं अथवा चार छोटे शोरूम। परन्तु यदि एक पार्टनर की मंशा व्यापार संघ का अध्यक्ष बनने की हो और दूसरे की मंशा धन कमाने की हो तो चर्चा से सहमति नहीं बन पाती है। वर्तमान समय में सत्ता और विपक्ष में साझा विजन का अभाव है। सत्ता पक्ष देश को अमीरों एवं बढ़ती असमानता के माध्यम से आगे बढ़ाना चाहता है। विपक्ष इससे सहमत नहीं है यद्यपि विपक्ष के पास अपना विजन भी नहीं है। दोनों के बीच कोई धुरी नहीं है जिसके आधार पर सहमति बन सके। इसलिये किसी भी मुद्दे पर चर्चा नहीं हो पा रही है।

इंडियन इंस्टीट्यूट आफ मैनेजमेंट अहमदाबाद के प्रोफेसर धीरज शर्मा के अनुसार अधपकी लोकतांत्रिक व्यवस्था में प्रभावी वर्गों द्वारा सरकार के संसाधनों का ज्यादा दोहन किया जाता है जो सम्पूर्ण जनता के लिये हानिप्रद होता है। सेन्ट्रल दिल्ली की सड़कों पर कर्मचारियों की फौज सूखी पत्तियों को बटोरती और झाड़ू लगाती नजर आती है। इसके विपरीत गलियों में मरम्मत भी नहीं होती है। सेन्ट्रल दिल्ली के लोगों ने सरकार के संसाधनों पर कब्जा कर लिया है। ऐसे में देश का साझा विजन नहीं बन पाता है और पार्लियामेंट में चर्चा नहीं हो पाती है।

पार्लियामेंट में सांसद चर्चा के लिए एकत्रित होते हैं। चर्चा से अलग–अलग विचारों के बीच संवाद पैदा होता है। जैसे एक पार्टनर कहे कि दो बड़े शोरूम का मैनेजमेंट आसान होगा और दूसरा कहे कि चार छोटे शोरूम खोलने से फैलाव का लाभ होगा तो चर्चा करके वे तीन शोरूम पर सहमति बना सकते हैं। परन्तु ऐसी खुली चर्चा तब ही संभव है जब दोनों पार्टनर झुकने और एक दूसरे की बात सुनने समझने को तैयार हों। वर्तमान सरकार में ऐसे लचीलेपन एवं संवाद का नितांत अभाव दिखता है। सरकार की स्ट्रेटजी है कि विपक्ष के विरोध के बावजूद अपनी पालिसी को ज्यों का त्यों लागू करे। विपक्ष को सरकार कुछ नहीं समझती है। सरकार को लगता है कि वह जो कुछ सोच रही है वही ब्रह्म सत्य है। ऐसे में पार्लियामेंट का कार्य केवल सरकार की पालिसी का अनुमोदन करना या न करना रह जाता है। यदि पार्लियामेंट चली तो वोट के आधार पर विपक्ष हार जाएगा और अनचाहे ही उसे अमान्य पालिसी का अनुमोदन करना होगा। ऐसा करने की तुलना में विपक्ष की पालिसी है कि पार्लियामेंट को चलने ही न दिया जाए।

'भारत के संविधान में भी जनता के कल्याण को ही सरकार का प्रमुख उद्देश्य माना गया है। परन्तु भारत की जनता का दुर्भाग्य है कि सरकार की चाल इसके विपरीत दिखती है। वर्तमान सरकार की मूल पालिसी कार्पोरेट घरानों और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हित में देश को चलाने की है जैसा कि 2जी स्पेक्ट्रम तथा कोलगेट विवादों से दिखता है। राइट टू फूड जैसे कानून से सरकार अपने इस चरित्र पर चादर डालने मात्र का प्रयास कर रही है।'

जनता के सामने हमारे सांसद एक विजन रखने में नाकामयाब हैं। सरकार की अमीरों एवं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के माध्यम से देश का विकास हासिल करने की पालिसी पर आम सहमति नहीं है। सरकार के द्वारा किन्हीं विशेष वर्गों के द्वारा देश के संसाधनों को दोहन करने का समर्थन किया जा रहा है। सरकार तथा विपक्ष दोनों ही छिछली बाते कर रहे हैं। नेताओं के इस क्षुद्र व्यवहार से जनता नाखुश है। पार्लियामेंट के प्रति जनता का विश्वास नहीं रह गया है। इस जन असंतोष के चलते विपक्ष ने आक्रामक रूप धारण किया है और पार्लियामेंट को चलने से रोक रही है जो ठीक ही है क्योंकि पार्लियामेंट के चलने से जन–हानि की प्रबल संभावना दिखती है।

वर्तमान आर्थिक सुधारों का पैरालिसिस में पड़े रहना ही उत्तम है। जरूरत है कि आर्थिक सुधारों के मूल ढ़ांचे पर पुनर्विचार किया जाए। वर्तमान स्ट्रेटजी है कि नेताओं, अफसरों और उद्यमियों को देश के संसाधनों का दोहन करने दो। उद्यमियों के बढ़े हुये लाभ के एक हिस्से को टैक्स के रूप में वसूलकर आम आदमी में नरेगा जैसे कार्यक्रमों से पुनर्वितरित कर दो। इस माडल को देश ने ठुकरा दिया है। इसके विकल्प के सामने आने पर ही वर्तमान पैरालिसिस दूर होगी जो ठीक ही है। ❑

धुंधली हुई आर्थिक तस्वीर

मनरेगा और किसानों की कर्ज माफी योजना में भारी पैमाने पर हुए भ्रष्टाचार से साफ हो चुका है कि इनसे सही व्यक्तियों को फायदा कम हुआ और सरकारी खजाने को चूना ज्यादा लगा। इसके अलावा सरकारी खजाने में आने वाले धन के उपयोग में संतुलन बेहद जरूरी है।

■ सी.एम. वासुदेव (पूर्व वित्त सचिव)

संप्रग सरकार के पहले कार्यकाल को काफी वाहवाही मिली थी। लेकिन इसका एक बड़ा कारण पूर्ववर्ती राजग सरकार की आर्थिक नीतियां भी थीं। राजग के कार्यकाल में आर्थिक सुधारों की गाड़ी बेधड़क आगे बढ़ी थी। हमें ध्यान देना चाहिए कि सुधारों का फायदा तुरंत नहीं मिलता। यह संभव नहीं है कि आज आप बैंकिंग संबंधी सुधार करें और उसका लाभ अगले महीने ही दिखने लगे। अर्थव्यवस्था की दीर्घकालीन सेहत को ध्यान में रखते हुए समय-समय पर आर्थिक सुधार संबंधी कदम उठाए जाने चाहिए।

लेकिन दुखद है कि इस मोर्चे पर यूपीए सरकार ने बहुत देर कर दी। पूर्ववर्ती राजग सरकार ने आधारभूत संरचना को मजबूत करने की दिशा में भी काफी काम किया था। लेकिन यूपीए के कार्यकाल में आधारभूत संरचना से जुड़ी कई अहम परियोजनाएं भूमि अधिग्रहण, पर्यावरण मंत्रालय की मंजूरी न मिलने और अन्य कारणों से अटकी पड़ी रहीं। रही-सही कसर एक के बाद एक घोटाले ने पूरी कर दी। न्यायपालिका ने घोटालों के चलते दखल दिया, तो कई आवंटन रद्द हो गए, जिससे पूरे निवेश माहौल पर असर पड़ा।

कुछ लोगों का तर्क है कि वैश्विक अर्थव्यवस्था की खराब हालत का असर हमारे यहां भी पड़ा है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता, पर मौजूदा बदहाली में तकरीबन 70 फीसदी योगदान घरेलू कारकों का है। नीतिगत अपंगता के चलते देश के कॉरपोरेट घरानों ने इस दौरान विदेशों में तो काफी निवेश किया है, पर वे यहां उसी तरह पैसा लगाने की हिम्मत नहीं जुटा पाए।

यूपीए-एक के दौरान कई लोकलुभावनी योजनाएं लागू की गईं। मनरेगा और किसानों की कर्ज माफी उनमें अहम हैं। भारत जैसे मुल्क में जनहित से जुड़े कार्यक्रमों को लागू करना अनिवार्य आवश्यकता है क्योंकि यहां काफी बड़ी आबादी गरीबी रेखा से नीचे जिंदगी बसर कर रही है। पर इनकी अहमियत तब है, जब ये योजनाएं व्यावहारिक हों और उन्हें ठीक ढंग से लागू किया जाए। मनरेगा और किसानों की कर्ज माफी योजना में भारी पैमाने पर हुए भ्रष्टाचार से साफ हो चुका है कि

भ्रष्टाचार के अलावा महंगाई के मोर्चे पर इस सरकार ने सबसे ज्यादा निराश किया। महंगाई पर लगाम कसने के लिए रिजर्व बैंक लगातार ब्याज दरों में इजाफा करता रहा, जिससे कारोबारियों और आम लोगों को मिलने वाले कर्ज महंगे होते गए। इससे निवेश प्रभावित हुआ और अर्थव्यवस्था का भट्ठा बैठ गया।

इनसे सही व्यक्तियों को फायदा कम हुआ और सरकारी खजाने को चूना ज्यादा लगा। इसके अलावा सरकारी खजाने में आने वाले धन के उपयोग में संतुलन बेहद जरूरी है।

करारोपण की मूल अवधारणा यह है कि अमीरों की जेब से कुछ पैसा निकालकर उसमें से कुछ हिस्सा गरीबों को दे दिया जाए और बाकी निवेश किया जाए। यूपीए सरकार ऐसा संतुलन बनाने में नाकाम रही।

भ्रष्टाचार के अलावा महंगाई के मोर्चे पर इस सरकार ने सबसे ज्यादा निराश किया। महंगाई पर लगाम कसने के लिए रिजर्व बैंक लगातार ब्याज दरों में इजाफा करता रहा, जिससे कारोबारियों और आम लोगों को मिलने वाले कर्ज महंगे होते गए। इससे निवेश प्रभावित हुआ और अर्थव्यवस्था का भट्ठा बैठ गया। सरकार ने राजकोषीय घाटा कम करने के लिए ठोस कदम उठाने में बहुत देरी की। नतीजतन चालू खाते का घाटा बढ़ता गया। रुपये की कीमत में तेज गिरावट हुई। इस स्थिति में अगर हमारा निर्यात बढ़ता, तो वह अर्थव्यवस्था के लिए अच्छा होता। पर ऐसा हुआ नहीं, बल्कि आयात बढ़ता गया।

आर्थिक सुधारों की दिशा में यह सरकार एनडीए जैसे कदम क्यों नहीं उठा पाई, यह सवाल स्वाभाविक है। दरअसल, कांग्रेस मूल रूप से सार्वजनिक क्षेत्र की अगुवाई वाले विकास मॉडल की समर्थक रही है। पूर्ववर्ती कांग्रेस सरकारें बैंकों और प्राकृतिक संसाधनों का राष्ट्रीयकरण करके इस दिशा में आगे बढ़ीं। यह उनके लिए एक सैद्धांतिक मसला भी है। इसके विपरीत आर्थिक सुधार और निजीकरण जैसे मोर्चे पर भाजपा के सामने कोई सैद्धांतिक बाधा नहीं थी।

मसलन, भाजपा सरकार ने अपने कार्यकाल में सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों में सरकारी हिस्सेदारी बेचने के लिए विनिवेश मंत्रालय तक बना डाला था। कांग्रेस ऐसे बेधड़क कदम नहीं उठा सकी।

हालांकि तमाम नाकामियों के बीच यूपीए सरकार ने खुदरा क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति, बैंकिंग क्षेत्र में सुधार, संस्थागत विदेशी निवेशकों को निवेश संबंधी ढील देने संबंधी कुछ ठोस फैसले लिए हैं, लेकिन इनके नतीजे मिलने में वक्त लगेगा। इसके अलावा सब्सिडी के बोझ को कम करने के लिए सरकार ने पेट्रोल की कीमतों को नियंत्रण मुक्त करने, डीजल की कीमतों में वृद्धि, सब्सिडी वाले रसोई गैस सिलेंडरों की सीमा तय करने जैसे कड़े कदम भी उठाए हैं। पी. चिदंबरम ने वित्त मंत्रालय संभालने के बाद आर्थिक अनुशासन की दिशा में कदम बढ़ाया है, जिससे दम घुटती अर्थव्यवस्था को जरूर कुछ राहत मिली है, पर यह काफी नहीं है। सत्ता में बैठे नीति नियंता अगर कुछ वक्त पहले जाग जाते, तो सरकार इतनी भी अलोकप्रिय नहीं होती। ❑

:: सूचना ::

स्वदेशी पत्रिका सम्राज्यवाद के खिलाफ एक सशक्त आवाज है। पत्रिका को ऐसे लोगों से प्रतिक्रियाएं, रिपोर्ट या आलेख की अपेक्षा है जो राष्ट्रहित में सोचते हैं और देश के स्वावलम्बन के लिए कुछ करने की इच्छा रखते है। जरूरी नहीं कि आप पत्रकार या लेखक ही हों, अपने आसपास से जुड़ी चीजों के प्रति आपकी संवदेना है और आप शब्दों में उसे लिख सकते है तो हमें अवश्य लिख भेजें। साथ ही स्वदेशी पत्रिका में छपे लेख आपको कैसे लगते हैं, क्या आप इसमें कुछ नए विषयों का समायोजन चाहते हैं कृपया हमें अवश्य अवगत कराएं। आपके विचारों को हम प्राथमिकता के साथ प्रकाशित करने का भी प्रयास करेंगे।

हमारा पता है :–

संपादक

स्वदेशी पत्रिका

'धर्मक्षेत्र', सेक्टर–8, बाबू गेनू मार्ग, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022

मुद्दा

कब मिलेगा सबके लिए स्वास्थ्य चिकित्सा

स्वास्थ्य सेवाओं को जरूरतमंदों तक पहुंचाना है तो सरकार को स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध करवाने में प्रमुख जिम्मेदारी बनाए रखनी होगी। महज निजी क्षेत्र के माध्यम से सभी तक स्वास्थ्य सेवाएं पहुंचाने का कार्य ठीक से नहीं हो सकता है, विशेषकर भारत जैसे देशों में जहां निर्धन लोगों के साथ ही बहुत कम क्रय क्षमता के लोगों की संख्या बहुत अधिक है दवा व वैक्सीन उद्योग का इस तरह का नियोजन व नियमन जरूरी है कि सही दवा उचित दाम पर सभी को उपलब्ध हों। इस उद्योग में अधिक मुनाफे की प्रवृत्ति ने बहुत जोर पकड़ा है जिस पर रोक लगाना जरूरी है. . .

■ भारत डोगरा

एक समय था जब 'सबके लिए स्वास्थ्य' या 'हैल्थ फॉर ऑल' के संदेश ने स्वास्थ्य क्षेत्र में एक नया उत्साह उत्पन्न कर दिया था। पर इन तमाम नेक इरादों और प्रयासों के बावजूद विश्व राजनीति और अर्थव्यवस्था में एक ऐसा दौर आया कि निजी मुनाफे की प्रवृत्ति ही हावी होती चली गई। वास्तविक जरूरतों पर आधारित न्यायसंगत स्वास्थ्य सेवाओं व दवाओं की बात करने वाले स्वास्थ्यकर्मी, विद्वान व कार्यकर्ता हाशिए पर धकेल दिए गए। निजीकरण की प्रवृत्तियां जोर पकड़ने लगीं। यह दौर आज भी चल रहा है और इसके असर से भारत जैसे देशों में मुनाफा स्वास्थ्य क्षेत्र में हावी होता गया है। सरकार स्वयं निजीकरण व सार्वजनिक–निजी पार्टनरशिप को तेजी से बढ़ावा दे रही है और स्वास्थ्य क्षेत्र में अपनी जिम्मेदारियों से पीछे हट रही है। दवाओं की कीमत व उद्योग को सही ढंग से नियंत्रित करने की जिम्मेदारी नहीं निभाई जा रही है।

देश के करोड़ों गरीब व जरूरतमंद लोगों की स्वास्थ्य स्थिति बिगड़ रही है। ऐसे में जानकार लोग 'सबके लिए स्वास्थ्य' जैसे संदेश की बात करें भी तो किस मुंह से। पर 'सबके लिए स्वास्थ्य' का उद्देश्य देश व विश्व के करोड़ों लोगों के लिए इतना महत्वपूर्ण है कि हमने इसे त्याग दिया तो यह हमारी बड़ी भूल होगी। हमें अथक प्रयास करना है कि यह महज एक नारा न बने अपितु देश की व दुनिया की हकीकत बने। इसके लिए जरूरी पहला कदम यह है कि सबके लिए स्वास्थ्य के उद्देश्य को भली–भांति समग्रता से समझा जाए और इस समझ का व्यापक स्तर पर प्रचार–प्रसार किया जाए।

यह विशेष तौर पर ध्यान में रखना जरूरी है कि अच्छे स्वास्थ्य का लक्ष्य केवल दवाओं, टेस्टों व डॉक्टरी इलाज से पूरा नहीं होता, अपितु इसके लिए सभी को उचित पोषण उपलब्ध होना भी जरूरी है। एक भूखे– बेघर व्यक्ति को केवल दवाओं या डॉक्टरी इलाज द्वारा अच्छा स्वास्थ्य नहीं दिया जा सकता है। स्वास्थ्य की योजनाएं बनाते समय कई बार इस बात पर समुचित ध्यान नहीं दिया जाता है कि केवल आलीशान और तकनीकी तौर पर सक्षम अस्पताल बना देना पर्याप्त नहीं है।

स्वस्थ रहने के लिए एक बुनियादी जरूरत है कि सही पोषण उपलब्ध हो। पोषण पर्याप्त मिलना चाहिए व संतुचित मिलना चाहिए। भोजन सही गुणवत्ता का होना चाहिए, ताजा होना चाहिए, कीटनाशकों व रासायनिक खाद आदि का अधिक असर उसमें नहीं होना चाहिए। प्रायः स्थानीय परंपरागत भोजन पर्याप्त मात्रा में मिलने से यह सब जरूरतें पूरी हो जाती हैं। हमारे देश में आजीविका का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत कृषि व उससे मिले–जुले कार्य जैसे पशुपालन है। देश के अधिकतर किसान छोटे किसान हैं।

अतः यह बहुत जरूरी है कि छोटे किसानों के पक्ष में नीतियां अपनाई जाएं व उनकी आजीविका का आधार मजबूत किया जाए। खेती का उत्पादन विशेषकर छोटे किसानों के खेत में बढ़ सके, वह भी ऐसे तौर–तरीकों से जिससे महंगे व हानिकारक रासायनिक कीटनाशकों आदि पर निर्भरता से बचा जा सके। इस तरह देश की अधिकाधिक आबादी को अपने खेत से ही पर्याप्त पोषण मिल सकता है जिसकी गुणवत्ता भी अच्छी होगी।

भूमि सुधार कार्यक्रम में तेजी लाकर भूमिहीन किसानों को भी कम से कम एक–दो एकड़ भूमि देने का पूरा प्रयास होना चाहिए। छोटे किसानों के भूमि अधिकारों की रक्षा होनी चाहिए। विस्थापन की संभावना को न्यूनतम करना चाहिए। घर के पास पौष्टिक सब्जी व फल उगाने के लिए छोटे बगीचे को प्रोत्साहित करना चाहिए।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के आंकड़ों के अनुसार लगभग 31 प्रतिशत ग्रामीण परिवार भूमिहीन हैं। उन्हें कुछ भूमि देने का प्रयास होना चाहिए। 60 प्रतिशत परिवार ऐसे हैं जिनके पास दो हैक्टेयर से कम भूमि है। इन परिवारों की खेती–किसानी को बेहतर बनाने पर विशेष ध्यान देना चाहिए। उचित पोषण के साथ साफ पेयजल की उपलब्धि स्वास्थ्य की एक बुनियादी जरूरत है। साफ पेयजल पर्याप्त मात्रा में व इस तरह से उपलब्ध होना चाहिए कि उसके लिए परिवार को अत्यधिक श्रम, समय या संसाधन न लगाने पड़ें। इसी तरह आवास व मोहल्ले स्तर पर सफाई की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। शौचालय व स्नानघर की व्यवस्था होनी चाहिए। रसोई पर खाना पकाने की स्वास्थ्य के अनुकूल उचित व्यवस्था होनी चाहिए। आवास, बिस्तर और कपड़ों की उपलब्धि ऐसी होनी चाहिए जिससे सब तरह के प्रतिकूल मौसम से समुचित रक्षा हो व सफाई के जरूरी नियमों का पालन हो सके।

सभी परिवारों की आर्थिक स्थिति इतनी सक्षम होनी चाहिए व सामाजिक सुरक्षा की ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि विभिन्न तरह की आपदाओं, आपात स्थितियों व दुर्घटनाओं की स्थिति में अपने सदस्यों के जीवन व स्वास्थ्य की रक्षा परिवार कर सकें। प्रतिकूल मौसम व प्राकृतिक आपदाओं से रक्षा की जरूरी व्यवस्था परिवार स्तर व समुदाय स्तर दोनों स्तरों पर होनी चाहिए। सभी परिवारों की बुनियादी जरूरतों को सामान्य व कठिन दोनों तरह की स्थितियों में पूरा करने को उच्च प्राथमिकता मिलनी चाहिए।

सभी लोगों की बुनियादी जरूरतों को टिकाऊ तौर पर व संतोषजनक ढंग से पूरा करना तब तक कठिन रहेगा जब तक साथ में मौजूदा आर्थिक आय व संपत्ति की विषमताओं को न्यूनतम करने की मांग को जोरदार ढंग से नहीं उठाया जाता है। विशेषकर यदि पर्यावरण की रक्षा भी करनी है तो यह और भी जरूरी हो जाता है कि अति धनी वर्ग की विलासिता व उपभोग पर नियंत्रण लगाया जाए।

जहां सभी स्तरों पर विषमता को कम करना जरूरी है, वहां स्वास्थ्य के संदर्भ में भूमि–वितरण व स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धि संबंधी विषमताओं को नियंत्रित करना और भी आवश्यक है। अतः जहां एक ओर स्वास्थ्य सेवाओं, डॉक्टरों, नर्सों, तकनीशियनों और सभी स्वास्थ्यकर्मियों की उपलब्धि को देश की जरूरतों के अनुसार बढ़ाने की चुनौती है, साथ ही इनकी गुणवत्ता बनाए रखने की चुनौती है, वहीं दूसरी ओर इससे भी बड़ी चुनौती यह है कि इनकी सेवाएं अधिक जरूरतमंद लोगों तक पहुंच सकें, विशेषकर दूर–दराज के गांवों के लोगों तक पहुंच सके।

यदि स्वास्थ्य सेवाओं को जरूरतमंदों तक पहुंचाना है तो सरकार को स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध करवाने में प्रमुख जिम्मेदारी बनाए रखनी होगी। महज निजी क्षेत्र के माध्यम से सब जरूरतमंदों तक स्वास्थ्य सेवाएं पहुंचाने का कार्य ठीक से नहीं हो सकता है, विशेषकर भारत जैसे देशों में जहां निर्धन लोगों के साथ ही बहुत कम क्रय क्षमता के लोगों की संख्या बहुत अधिक है। कम्युनिटी या सामुदायिक स्वास्थ्य प्रयासों की बहुत जरूरत है जिनमें उचित इलाज के साथ–साथ बीमारियों, स्वास्थ्य समस्याओं व दुर्घटनाओं की रोकथाम के प्रयासों को भी समुचित महत्व मिल सके। इसके साथ दवा व वैक्सीन उद्योग का इस तरह का नियोजन व नियमन जरूरी है जिससे सही दवा उचित दाम पर सभी जरूरतमंदों को उपलब्ध हों।

स्वास्थ्य क्षेत्र में निजी सेक्टरों द्वारा अधिक मुनाफे की प्रवृत्ति ने बहुत जोर पकड़ा है जिस पर रोक लगाना बहुत जरूरी है। इस कारण एक ओर दवाएं महंगी हो रही है, साथ ही दूसरी ओर अनावश्यक दवाएं भी मरीजों को दी जा रही हैं। वैक्सीन के क्षेत्र में तो यह स्थिति और भी खतरनाक हो सकती है। सरकार को चाहिए कि वह आवश्यक व जीवन–रक्षक दवाओं की सही सूची तैयार करे व इनके जेनेरिक रूप में उत्पादन में स्वयं भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाए तथा ऐसी सस्ती जेनेरिक दवाएं का उत्पादन करने वाली कंपनियों को भी प्रोत्साहित करे, ताकि इन दवाइयों की कोई कमी न हो। ❑

कब तक जान लेगा तम्बाकू

हमारा पड़ोसी पाकिस्तान भी इस दिशा में सचेत है। वह भले ही तंबाकू का उत्पादन हमसे अधिक करता हो, पर वहां भी सिगरेट–तंबाकू के पैकेटों पर डरावने चित्र और गंभीरता चेतावनी प्रकाशित की जाती है, इससे वहां के लोगों ने इसका उपयोग कम कर दिया है। यदि आंकड़ों पर ध्यान दिया जाए तो यह तय है कि अगले नौ वर्षों के अंदर ही तंबाकू सेवन से हमारे देश के 13 प्रतिशत लोग अकाल मौत के शिकार होंगे।

■ महेश परिमल

आज हमारे पास समय नहीं है, यह सच है। पर भविष्य में समय की और भी कमी होने वाली है। हमारे पास इतना भी समय नहीं होगा कि हम अपने परिजनों की अंत्येष्टि में शामिल हो पाएंगे, क्योंकि अब महीनों–सप्ताहों में नहीं, बल्कि हर रोज हमारे किसी न किसी परिजन की मौत होने वाली है। जिस तेजी से तंबाकू से जुड़ी चीजों का सेवन बढ़ रहा है, उससे आगामी 9 वर्षों में 13 लाख लोगों की मौत केवल इस व्यसन से होने वाली है। यह बहुत ही कड़वा सच है, इसे हम समझ रहे हैं, पर हमारी गठबंधन वाली विवश सरकार नहीं समझ पा रही है। सुप्रीम कोर्ट ने आदेश दिया है कि पहली जून से तंबाकू और सिगरेट के पैकेट पर डरावने चित्रों के साथ यह बताया जाए कि इससे कैंसर होता है। कोर्ट ने इसे अनिवार्य रूप से लागू करने का फैसला दिया है, लेकिन सरकार पर तंबाकू लॉबी इतनी हावी है कि वह चाहकर भी कुछ नहीं कर पा रही है। वैसे भी सुप्रीम कोर्ट के न जाने कितने नियम–कायदों की सरेआम धज्जियां उड़ रही हैं, ऐसे में एक और नियम आ गया तो क्या फर्क पड़ता है?

सुप्रीम कोर्ट के आदेश पर पहली जून से सिगरेट के पैकेट पर 40 प्रतिशत स्थान डरावने चित्रों के लिए सुरक्षित रखने और 'तंबाकू यानी कैंसर' जैसी चेतावनी लिखना अनिवार्य होगा। पर हमारी देश की राजनीति पर तंबाकू लॉबी इतनी अधिक हावी है कि सरकार चाहकर भी इस लॉबी के खिलाफ किसी प्रकार की कार्रवाई करने से बच रही है। वैसे भी प्रधानमंत्री ने यह तो स्वीकार कर ही लिया है कि गठबंधन सरकार की अपनी मजबूरियां होती हैं। इसलिए कोई घोटाले कर सकता है तो कोई सुप्रीम कोर्ट के आदेश की खुलेआम अवहेलना भी कर सकता है। सरकार तब भी विवश थी, आज भी विवश है।

सीने में तेजी का दर्द, सांस रुकने लगे और ऐसा दबाव का अनुभव होने लगे, इस पीड़ा को महसूस करना हो तो केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय के किसी भी अधिकारी से मिल लीजिए, वह बताएगा कि हमारा विभाग किस तरह से तंबाकू लॉबी के दबाव का शिकार है। ये अधिकारी बताते हैं कि तंबाकू से हर वर्ष देश में 9 लाख लोग एड़ियां रगड़–रगड़कर मरते हैं। फिर भी तंबाकू लॉबी अपने निहित स्वार्थ के कारण केवल अपना मुनाफा ही

करीब 11 साल हो गए तंबाकू के उत्पादों पर डरावने चित्र प्रकाशित करने का आदेश हुए, पर अब पहली जून से यह आदेश लागू है। दूसरी ओर गठबंधन सरकार की विवशताओं के चलते सुप्रीम कोर्ट का यह निर्णय कितना अमल में लाया जाएगा, इस पर संदेह है।

देख रही है। कितने बरस हो गए सिगरेट के पैकेट पर डरावने चित्र और इससे होने वाली हानियों को बताने के आदेश हो चुके हैं, पर बहुत कंपनियों के सिगरेट पैकेटों से डरावने चित्र नदारद हैं। आश्चर्य की बात यह है कि हमारे देश के कृषि मंत्री शरद पवार तंबाकू की लत के कारण होठों का ऑपरेशन करा चुके हैं, इसके बाद भी उनके जैसे कई मंत्री हैं, जिन्हें तंबाकू की लत है और वे इस व्यसन को छोड़ने को तैयार ही नहीं है।

फिर भी तंबाकू का इस्तेमाल करने वाले हमेशा यही सोचते हैं कि तंबाकू दूसरों को भले ही नुकसान पहुंचाए, पर हमें कभी नुकसान नहीं पहुंचाएगा। उनकी यही सोच उनके परिवार वालों पर किस तरह से भारी पड़ती है, इसे शायद वे समझने को तैयार नहीं है। तंबाकू लॉबी सरकार पर लगातार हावी होती जा रही है।

तंबाकू और सिगरेट के पैकेट पर डरावने चित्र होने चाहिए, इसके लिए सरकार भी राजी है, तब जब भी वह इस दिशा में कदम उठाती है, तंबाकू लॉबी ऐसा करने से रोक देती है। विवश सरकार एक बार फिर मजबूर हो जाती है। इस दिशा में सरकार की सक्रियता को देखते हुए तीन वर्ष पहले तंबाकू उत्पादकों ने अपने कारखाने बंद कर दिए। उनका मानना था कि सरकार को तंबाकू के व्यसनी ही विवश करेंगे हमारे कारखाने खोलने के लिए। आखिर सरकार ही झुकी।

करीब 11 साल हो गए तंबाकू के उत्पादों पर डरावने चित्र प्रकाशित करने का आदेश हुए, पर अब पहली जून से यह आदेश लागू है। दूसरी ओर गठबंधन सरकार की विवशताओं के चलते सुप्रीम कोर्ट का यह निर्णय कितना अमल में लाया जाएगा, इस पर संदेह है।

सुप्रीम कोर्ट का यह आदेश तंबाकू कंपनियां मानने वाली नहीं है। ये अच्छी तरह से जानती हैं कि हमारे राजनीतिक आका ही ऐसा होने नहीं देंगे। दूसरी ओर सुप्रीम कोर्ट ने सरकार को स्पष्ट रूप से कह दिया है कि सरकार अब दिशा में सक्रिय हो जाए और पहली जून से सिगरेट तंबाकू के पैकेट पर डरावने चित्रों के साथ यह भी लिखा जाए कि तंबाकू से कैंसर होता है। सरकार तो यह कहने से भी नहीं अघाती कि हम तो इसके लिए पूरी तरह से तैयार हैं, लेकिन हम पर तंबाकू लॉबी का दबाव है। सुप्रीम कोर्ट ने स्वास्थ्य विभाग से पूछा है कि हमें यह बताया जाए कि हमारे आदेश का पालन करने की दिशा में आपने क्या कदम उठाए हैं?

तंबाकू का इस्तेमाल करने वाले हमेशा यही सोचते हैं कि तंबाकू दूसरों को भले ही नुकसान पहुंचाए, पर हमें कभी नुकसान नहीं पहुंचाएगा। उनकी यही सोच उनके परिवार वालों पर किस तरह से भारी पड़ती है, इसे शायद वे समझने को तैयार नहीं है।

तंबाकू उद्योग के रसूखदार हमारे कामों में पहाड़ जैसे अवरोध उत्पन्न करते हैं, यह बताते हुए स्वास्थ्य विभाग के अधिकारी अपना नाम न छापने की शर्त पर कहते हैं कि वालियंटरी हेल्थ ऐसोसिएशन ऑफ इंडिया नामक एनजीओ चलाने वाले बिनोय मैथ्यू आरटीआई के तहत इस आशय की जानकारी मांगी। तब केंद्र सरकार ने स्वीकार किया कि तंबाकू लॉबी हम पर दबाव डालती है। टोबैको इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया औ बीड़ी मर्चेट एसोसिएशन इस मामले पर सरकार पर लगातार दबाव बनाए हुए हैं।

सन् 2010 की 9 नवम्बर को स्वास्थ्य मंत्री गुलाम नबी आजाद ने संसद में कहा था कि हम तंबाकू और सिगरेट के पैकेट पर गंभीर चेतावनी प्रकाशित करने के लिए तैयार हैं, लेकिन ऐसे विज्ञापन पहले भी प्रकाशित हुए हैं, पर इसका असर नहीं होता। मैथ्यू तो साफ–साफ कहते हैं कि नागरिकों के स्वास्थ्य के प्रति स्वास्थ्य विभाग ही गंभीर नहीं है। तो फिर आम आदमी कैसे गंभीर रह सकता है? स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता फैलाने में यह विभाग पूरी तरह से नाकाम साबित हुआ है।

विश्व के कई देशों में सिगरेट और तंबाकू के पैकेटों पर इस तरह की गंभीर चेतावनी प्रकाशित करते हुए डरावने चित्र प्रकाशित किए हैं, इसका असर भी हुआ है। इसकी बिक्री भी प्रभावित हुई है। हमारा पड़ोसी पाकिस्तान भी इस दिशा में सचेत है। वह भले ही तंबाकू का उत्पादन हमसे अधिक करता हो, पर वहां भी सिगरेट–तंबाकू के पैकेटों पर डरावने चित्र और गंभीरत चेतावनी प्रकाशित की जाती है, इससे वहां के लोगों ने इसका उपयोग कम कर दिया है। यदि आंकड़ों पर ध्यान दिया जाए तो यह तय है कि अगले नौ वर्षों के अंदर ही तंबाकू सेवन से हमारे देश के 13 प्रतिशत लोग अकाल मौत के शिकार होंगे।

सरकार ने सार्वजनिक स्थानों पर धूम्रपान करने पर प्रतिबंध तो लगा दिया है, लेकिन वह कितना अमल में लाया जा रहा है, इसे सभी जानते हैं। आज भी पाठशालाओं, कालेजों के आसपास इस तरह की प्रतिबंधित चीजों की खुलेआम बिक्री हो रही है। सरकार कुछ कर ही नहीं पा रही है। ❑

करजई करें त्रिकोणात्मक कूटनीति

इस समय अफगानिस्तान के लिए कई अनुकूल परिस्थितियां बन रही हैं। भारत और चीन, दोनों का रवैया रचनात्मक है। यह बात चीनी प्रधानमंत्री ली ने भारत में भी कही है। पाकिस्तान में नवाज शरीफ प्रधानमंत्री बन रहे हैं। ऐसी स्थिति में यदि हामिद करजई भारत, चीन और पाकिस्तान के त्रिकोणात्मक सहयोग का आह्वान करें तो उन्हें सफलता मिलनी संभव है यदि अफगानिस्तान स्थिर और मैत्रीपूर्ण रहेगा तो इन तीनों राष्ट्रों के लिए मध्य एशिया और पश्चिम एशिया के ऊर्जा के भंडार खुल पड़ेंगे।

■ डॉ. वेदप्रताप वैदिक

अफगानिस्तान के राष्ट्रपति हामिद करजई की हालिया भारत–यात्रा को उतना महत्व नहीं मिला, जितना मिलना चाहिए था। वह चीनी प्रधानमंत्री ली की दिल्ली–यात्रा में दब–सी गई, लेकिन यहां एक तथ्य गौर करने लायक है। करजई की यात्रा के पहले उनके दिल्ली स्थित राजदूत शैदा अब्दाली की प्रेस कांफ्रेंस की रपट काफी जोरदार ढंग से छपी। राजदूतों के बयानों को ज्यादा महत्व नहीं दिया जाता, लेकिन अब्दाली के बयान को आखिर इतना क्यों उछाला गया?

भारतीय पत्रकारों ने समझा यह कि इस बार हामिद करजई सिर्फ इसलिए भारत आ रहे हैं कि अमेरिकी सैनिकों की वापसी के बाद वे अफगानिस्तान में भारतीय फौज को बुलाना चाहते हैं। यदि ऐसा होता तो यह सचमुच बड़ी खबर होती, लेकिन बात वैसी नहीं थी। अफगान राजदूत ने सिर्फ सैन्य–सहयोग बढ़ाने की बात कही थी और अपनी बात को स्पष्ट करते हुए उन्होंने मांग की थी कि भारत, अफगानिस्तान से हथियारों के मामले में ज्यादा से ज्यादा सहयोग करे। भारत, अफगान फौजियों को सैन्य–प्रशिक्षण तो

दे ही रहा है। भारत–अफगान सामरिक भागीदारी के समझौते के अंतर्गत इस तरह की और इससे ज्यादा आशा करना गलत नहीं है।

अफगानिस्तान में आजकल सुरक्षा की स्थिति जिस तरह गड़बड़ा रही है और तालिबान के हौसले बुलंद हो रहे हैं, हामिद करजई आखिर किससे मदद मांगेंगे? यूं तो मदद उन्हें सबसे ज्यादा अमेरिका से मांगनी चाहिए।

अमेरिका दुनिया का सबसे बड़ा हथियारों का निर्माता और विक्रेता है। अफगानिस्तान को दलदल में फंसाने का श्रेय भी अमेरिका को ही है। अमेरिका का नैतिक कर्तव्य है कि वह अफगानिस्तान में इतने हथियार छोड़ जाए या उसे देकर जाए कि अगले दस सालों तक उसे कोई हथियार खरीदने की जरूरत न पड़े। अफगान फौज को जितने हथियारों की जरूरत है, वह अमेरिका के लिए कण भर बोझ भी नहीं है, जबकि वही मात्रा भारत के लिए मन भर बोझ के बराबर है।

आश्चर्य है कि करजई सरकार भारत से हथियार मांग रही है और अमेरिका से नहीं। यह हो सकता है कि अफगान फौज और पुलिस के लिए जैसे हथियारों की जरूरत है, वैसे हथियार अमेरिका से अच्छे भारत में मिलते हों? लेकिन वे हथियार भी अमेरिकी पैसों से खरीदे क्यों नहीं जा सकते?

अमेरिका इस समय हर माह अफगानिस्तान में 10 बिलियन डॉलर खर्च कर रहा है। यदि वह अपना दो–तीन माह का खर्च ही इन हथियारों पर कर दे तो करजई को किसी के सामने हाथ फैलाने की जरूरत क्यों पड़े? लेकिन लगता है कि अमेरिका तंग आ

चुका है। उसकी स्थिति भागते हुए भूत की हो गई है। वह अपनी लंगोटी भी छोड़कर जाना नहीं चाहता। अब यदि करजई भारत से हथियार मांग रहे हैं तो इसमें गलत क्या है? उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि उन्हें काबुल में भारतीय फौज चाहिए। पिछले 10 सालों में दर्जनों बार करजई साहब से मेरी अंतरंग भेंट हुई है। उन्होंने मुझसे या किसी प्रधानमंत्री से कभी नहीं कहा कि हम अपनी फौज अफगानिस्तान में भेजें।

वास्तव में भारत ने उससे सटे हुए पड़ोसी देशों – नेपाल, श्रीलंका, मालदीव, बांग्लादेश – में तो अपनी फौज को अलग–अलग कारणों से भेजा है, लेकिन उनके पार फौज कभी नहीं भेजी। अपनी सीमाओं से दूर फौजी हस्तक्षेप से भारत परहेज करता रहा है। जनवरी, 1981 में जब प्रधानमंत्री बबरक कारमल ने पहली बार भारतीय फौज भेजने का प्रस्ताव दिया तो मुझे उसी वक्त उससे असहमति जतानी पड़ी। प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने भी उसे दरकिनार कर दिया, लेकिन हमने अफगान युद्धक जहाजों के लिए टायर आदि जरूर भिजवाए। अब भी भारत ने करजई को पूरा आश्वासन दिया है और वे काफी खुश होकर लौटे हैं।

अभी तक भारत सरकार ने अपने रणनीतिक भागीदारी समझौते के बावजूद खुद को सैन्य–पुलिस प्रशिक्षण तथा कुछ हल्के हथियारों तक सीमित रखा है। वह अफगानिस्तान में अपनी फौज भेजने की बात ख्वाब में भी नहीं सोच सकती। इसके कई कारण हैं।

सबसे पहला तो यह है कि किसी भी देश में फौज भेजने के लिए हमारे नेताओं में दम–गुर्दा और गहरी समझ होनी चाहिए। नेहरू और इंदिरा, दोनों में दम–गुर्दा और समझ थी। इसीलिए नेपाल और बांग्लादेश में विलक्षण सफलता मिली। 1988 में मालदीव में तख्तापलट को उलटने में हमारे अनुभवी रक्षामंत्री कृष्णचंद पंत सफल हुए, लेकिन श्रीलंका में फौज भेजकर राजीव गांधी और उनके कच्चे सलाहकार फंस गए। इस वक्त भारत में सरकार तो है लेकिन नेता कहां हैं? नेताओं की कुर्सियों में झूल रहे नौकरशाहों में न तो दम–गुर्दा है और न ही समझ! अगर वे काबुल में फौज भेज दें तो उसे जिंदा वापस बुलाना मुश्किल हो जाए।

दूसरा, अफगानिस्तान में गई विदेशी फौजों का अफगानों ने हमेशा कचूमर निकाल कर रख दिया है। अंग्रेजों ने बादशाह दोस्त मुहम्मद के विरुद्ध 1838 में 16 हजार जवानों की फौज भेजी थी। अफगानों ने चार साल में ही सारी फौज को कत्ल कर डाला। इसी प्रकार ब्रेझनेव की सोवियत फौज ने अपने 13 हजार जवान खोए और वह अपना–सा मुंह लेकर लौटी। अब अमेरिका भी अपने घुटने तुड़ाकर अफगानिस्तान से निकल भागने को बेताब है। तो भारत वहां फौज भेजकर बदनाम क्यों होना चाहेगा?

तीसरा, यदि आज भारत वहां फौज भेजने का निर्णय करे तो सबसे ज्यादा एतराज पाकिस्तान को होगा। अफगानिस्तान में जितने भी पाक–परस्त तत्व हैं, वे उस फौज का डटकर विरोध करेंगे।

चौथा, भारत के पास आज न तो अंग्रेजों की तरह कोई साम्राज्य है और न ही सोवियत रूस और अमेरिका की तरह अथाह पैसा, जिसे वह बर्बाद कर सके। पांचवां, भारत की सीमा से सटे देशों में फौज भेजना एक बात है और उसके पार भेजना बिल्कुल दूसरी बात। भू–राजनीतिक रणनीति अत्यंत प्रतिकूल बैठेगी। हालांकि फारस की खाड़ी से होकर जरंजदि लाराम सड़क खुल गई है। भारत द्वारा निर्मित इस सड़क ने पाकिस्तान पर अफगानिस्तान की निर्भरता को घटा दिया है। लेकिन अभी स्थिति ऐसी नहीं बनी है कि इस सड़क के रास्ते लाख दो लाख भारतीय जवानों की अफगानिस्तान में देखभाल की जा सके। इस समय अफगानिस्तान के लिए कई अनुकूल परिस्थितियां बन रही हैं। भारत और चीन, दोनों का रवैया रचनात्मक है। यह बात चीनी प्रधानमंत्री ली ने भारत में भी कही है। पाकिस्तान में नवाज शरीफ प्रधानमंत्री बन रहे हैं। वे भी चाहेंगे कि अमेरिकी वापसी के बाद अफगानिस्तान में स्थिरता आए।

पाकिस्तान जितनी बात चीन की मानता है, किसी अन्य देश की नहीं मानता है। ऐसी स्थिति में यदि हामिद करजई भारत, चीन और पाकिस्तान के त्रिकोणात्मक सहयोग का आह्वान करें तो उन्हें सफलता मिलनी संभव है। इस समय इन तीनों पड़ोसी राष्ट्रों को अफगानिस्तान में अपना–अपना प्रभाव बढ़ाने की चिंता करने की बजाय इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि अमेरिकी सैनिकों की वापसी के बाद वहां शांति व्यवस्था बनी रहे ताकि अफगानिस्तान इन तीनों राष्ट्रों के लिए अपार समृद्धि का कारण बन सके। यदि अफगानिस्तान स्थिर और मैत्रीपूर्ण रहेगा तो इन तीनों राष्ट्रों के लिए मध्य एशिया और पश्चिम एशिया के ऊर्जा के भंडार खुल पड़ेंगे। करजई सही समय पर भारत आए थे लेकिन अब उनको नवाज और ली से भी सीधा संपर्क करना होगा। ❑

मारे गए बेचारे कौए

आठ बोरों में मरे हुए कौए भर कर लाए गए। कर्नल की खुशी का ठिकाना नहीं था। उनकी आज्ञा पाकर खानसामे ने बोरे के भीतर हाथ डाला और एक कौए को बाहर निकाला। कर्नल ने तब महसूस किया कि उसने कितनी बड़ी भूल की है। उनके कहने का मतलब कहवा (कॉफी) से था। पर भाषा की अनभिज्ञता के कारण 'कहवा' न कहकर कौआ कह डाला था। जिसके कारण दरभंगा क्षेत्र के हजारों कौओं को अपने प्राणों का बलिदान देना पड़ा।

■ उमेश प्रसाद सिंह

भारतीय लोक जीवन में कौओं की खासी चर्चा है। प्राचीन काल में साधारण जनता के लिए न तो यातायात की उचित व्यवस्था थी न डाक की। उस समय किसी का संवाद पाना कठिन कार्य था। प्रवासी पति की अर्द्धांगिनी अपने पति के कुशल संवाद के लिए चिंतित रहती थी। वह कौआ उड़ाकर या कौए की बोली सुनकर शुभ समाचार या पति के गृहागमन की पूर्व सूचना पाने की चेष्टा करती थी। देश के पूर्वोतर राज्यों में यह आम धारणा है कि कौए आहार बांट कर खाते हैं तो शुभ समाचार मिलने की संभावना बढ़ जाती है। कौओं ने इस देश का बड़ा उपकार किया है। वे कीड़े–मकोड़े तथा गंदगी खाकर प्रदूषण को संतुलित बनाए रखते हैं। श्राद्ध के अवसर पर उनका खाना अनिवार्य है। कहते हैं कि उन्हें भोजन खिलाने से मृत आत्मा को शांति मिलती है तथा स्वर्ग में जाने की संभावना बढ़ जाती है। सभी पक्षियों में ज्यादा शरारती कौए होते हैं। वे तरह–तरह के शरारती खेल भी खेलते हैं।

एक बार की घटना है कि 'एक मौलाना अपने आंगन में बैठे हुए कोई पुस्तक पढ़ रहे थे। इतने में उनकी दृष्टि छत से लगी हुई एक बांस की सीढ़ी पर पड़ी। उन्होंने देखा कि एक कौआ एक के बाद एक डंडे पर चढ़ता हुआ छत पर जा पहुंचा। बस मौलाना ने तुरंत सीढ़ी हटा दी और बोले 'हजरत देखें तो आप कैसे नीचे उतरते हैं।'

उत्तर प्रदेश के चित्रकूट में कौए नहीं पाए जाते हैं। यहां के संबंध में

किवदन्ती है कि एक बार किसी कौए ने बनवास के दिनों में सीता जी के अंग पर चोंच मारी और वह उनके अभिशाप का भागी बना। जिसके कारण उसे ही नहीं बल्कि उसकी पूरी जाति का मन्दाकिनी के तट पर स्थित इस पुनीत स्थान से सदा के लिए निर्वासित होना पड़ा।

आम धारणा है कि कौए आहार बांट कर खाते हैं तो शुभ समाचार मिलने की संभावना बढ़ जाती है। कौओं ने इस देश का बड़ा उपकार किया है। वे कीड़े–मकोड़े तथा गंदगी खाकर प्रदूषण को संतुलित बनाए रखते हैं। श्राद्ध के अवसर पर उनका खाना अनिवार्य है। कहते हैं कि उन्हें भोजन खिलाने से मृत आत्मा को शांति मिलती है तथा स्वर्ग में जाने की संभावना बढ़ जाती है।

ऐसा अनुमान है कि देश में सर्वाधिक कौए कोलकाता में रहते हैं। इस बात की पुष्टि अंग्रेज लेखकों ने की है। सन् 1940 में कोलकाता में भयंकर तूफान आया था। इस तूफान में अनेक स्थान और हजारों वृक्ष गिर गए थे। तूफान की शांति के बाद देखा गया कि लगभग डेढ़ लाख कौए मरे पड़े हैं।

कौए अपने अंदर की प्रेरणा से भावी दुर्घटनाओं का पता पा जाते हैं। 'बिहार का इतिहास' में लिखा है कि राज्य में सबसे भीषण भूकंप सन् 1934 में आया था। इस भूकंप ने उत्तर बिहार को ध्वंस प्राय कर दिया था। भूकंप आने से आधा घंटा पूर्व देखा गया कि कौए बड़ी घबराहट से उड़ने लगे थे। वे लगातार कांव–कांव चिल्ला रहे थे। कौओं की यह स्थिति देखकर लोग चकित हो रहे थे। कुछ ही देर बाद धरती डोलने लगी। जमीन फूटकर पानी बाहर निकलने लगा, घर गिरे, लोग मरे। तब समझ में आया कि कौए क्यों चिल्ला रहे थे। ऐसे परोपकारी कौओं की संख्या लगातार कम हो रही है। पहले जहां पेड़–पौधे, बगीचे कौओं से भरे रहते थे। वहां अब इक्का–दुक्का ही कौए दिखाई देते हैं।

एक बार ऐसा समय आया जब बेरहमी के साथ एक ही दिन में लगभग तीन हजार कौए मार डाले गए थे। इस बात की चर्चा 'दरभंगा राज्य के इतिहास' में है। घटना 1915 की है। उस समय नेपाल तथा अंग्रेजों के बीच लड़ाई छिड़ गई थी। अंग्रेजी फौज की एक टुकड़ी नेपाल की ओर जा रही थी। इसका नेतृत्व अंग्रेज कर्नल ओलाहर कर रहे थे। रास्ते में दरभंगा (बिहार) में उनका पड़ाव पड़ा। दरभंगा के तत्कालीन महाराजा छत्र सिंह ने कर्नल का भरपूर स्वागत किया। उनके लिए तरह–तरह के उपहार प्रस्तुत किये। कर्नल ने उन उपहारों को सधन्यवाद लौटा दिया।

उन्होंने कहा ''महाराज मैंने सुना है कि आपके यहां कौआ बहुत बढ़िया होता है। यदि आप उसमें से हमें कुछ दे सकें तो मैं आभारी रहूंगा। महाराज बड़े चकित हुए और बोले 'हाँ यहां कौआ तो बहुत मिलता है पर यह तो सारे हिन्दुस्तान में पाया जाता है।'

'नहीं महाराज।' कर्नल ओलाहर ने कहा ''मैं तो कंपनी के सारे इलाके में घूमा हूं। कहीं भी ऐसा कौआ देखने को नहीं मिला। आप विश्वास करें, मैंने इसकी पूरी छानबीन की है।''

कौए अपने अंदर की प्रेरणा से भावी दुर्घटनाओं का पता पा जाते हैं। 'बिहार का इतिहास' में लिखा है कि राज्य में सबसे भीषण भूकंप सन् 1934 में आया था। इस भूकंप ने उत्तर बिहार को ध्वंस प्राय कर दिया था। भूकंप आने से आधा घंटा पूर्व देखा गया कि कौए बड़ी घबराहट से उड़ने लगे थे। वे लगातार कांव–कांव चिल्ला रहे थे। कौओं की यह स्थिति देखकर लोग चकित हो रहे थे। कुछ ही देर बाद धरती डोलने लगी।

महाराज ने अपने दरबारियों की ओर देखकर कहा 'बड़ा ताज्जुब है।' दरबारी बोले 'सरकार ताज्जुब तो अवश्य है लेकिन कर्नल साहब को इसका शौक है तो हमें कौवे इकट्ठे कर इन्हें अवश्य देने चाहिए।'

कर्नल ने कहा 'यदि आप मुझे थोड़ा भी उपलब्ध करा देंगे तो भी हम लोग आपके कृतज्ञ होंगे। नेपाल की कड़ी सर्दी में हमें लम्बी लड़ाई लड़नी है। यह निसंदेह हमारे लिए सहायक होगा। हम सभी को कौआ अत्यंत रुचिकर है।'

महाराज ने कहा 'अवश्य आप जितने कौए चाहेंगे हम आपकी सेवा में हाजिर करेंगे।' कर्नल बोला 'इसे लूट न माना जाए तो मैं सात–आठ थैलियां भर कर ले जाना चाहूंगा।'

महाराज की आज्ञा से दिनभर बन्दूक से कौओं का शिकार होता रहा। लगभग तीन हजार कौए मार डाले गए।

शाम को कर्नल और उनके साथी खाने पर बैठे तभी एक सिपाही ने आकर कहा 'महाराज की भेंट लेकर उनके प्रतिनिधि पधारे हैं। कर्नल ने कहा 'उन्हें शीघ्र भीतर लाओ।'

आठ बोरों में मरे हुए कौए भर कर लाए गए। कर्नल की खुशी का ठिकाना नहीं था। उनकी आज्ञा पाकर खानसामे ने बोरे के भीतर हाथ डाला और एक कौए को बाहर निकाला। कर्नल ने तब महसूस किया कि उसने कितनी बड़ी भूल की है। उनके कहने का मतलब कहवा (कॉफी) से था। पर भाषा की अनभिज्ञता के कारण 'कहवा' न कहकर कौआ कह डाला था। जिसके कारण दरभंगा क्षेत्र के हजारों कौओं को अपने प्राणों का बलिदान देना पड़ा। इससे कौओं की संख्या आज भी वहां नगण्य है। ❑

आखिर स्वदेशी की अवधारणा क्या है? वास्तव में यह मानना भूल है कि 'स्वदेशी' का संबंध केवल माल या सेवाओं से है। यह तो फौरी किस्म की सोच होगी। स्वदेशी का मतलब है, देश को आत्मनिर्भर बनाने की प्रबल भावना, राष्ट्र की सार्वभौमिकता और स्वतंत्रता की रक्षा की भावना तथा समानता के आधार पर अंतर्राष्ट्रीय सहयोग का स्वीकार। स्वदेशी की अवधारणा माने देशभक्ति का आविष्कार है, किन्तु इतना बोलने से प्रकट नहीं होता, राष्ट्रीय जीवन, व्यक्तिगत जीवन के सभी कार्यों में, स्वदेशी का दर्शन होना चाहिए।

♦ ♦ ♦ ♦

एक बार चीन और कोरिया की सरकारों ने जब माईकल जैक्सन को इस बिना पर अपने देश में आने नहीं दिया कि उसका शो सांस्कृतिक हमला है, तब वे अपनी स्वदेशी भावना ही जाहिर कर रहे थे। यह घटना यह भी जातती है कि स्वदेशी भौतिक वस्तुओं तक ही सीमित नहीं है बल्कि यह एक व्यापक आधार वाली विचारधारा है, जो राष्ट्रीय जीवन के तमाम पहलुओं को खुद में समेटती है।

– राष्ट्रऋषि दत्तोपंत ठेंगड़ी

हर दिन पर्यावरण को बचाने का संकल्प लें

आज दिल्ली सहित देश के छोटे बड़े शहरों में हरियाली की जगह तेजी से कंक्रीट की इमारतें बनती जा रही है। जहां कभी पानी से लबालब भरे तालाब, पोखर, झीलें और अन्य जल स्रोत हुआ करते थे वहां भी अब अवैध निर्माण का कार्य हो रहा है। और जो कुछ बच गया है वे सूखे उजाड़ पड़े हैं। मौसम बदल रहा है। जीव–जंतु धीरे–धीरे विलुप्त हो रहे है। खेतों में अब पहले की तरह फसलों की पैदावार नहीं होती है। बढ़ते शहरीकरण के कारण लोगों को कई–कई तरह की बीमारियां भी हो रही हैं। देखा जाए आज मनुष्य प्रकृति से छेड़छाड़ कर रहा है जिसका दुष्परिणाम आज हमारे सामने हैं।

मनुष्य ने अपने स्वार्थों के खातिर प्रकृति और धरती के भीतरी संसाधनों का इतना दोहन किया है और बदलने में उसने प्रकृति और धरती को कुछ नहीं दिया। विकास की अंधाधुंध चमक ने मनुष्य को गलत रास्ते पर आज चला दिया है। देखा जाए तो इसके लिए सभी दोषी है चाहे वह अमीर हो या गरीब या बड़ा–छोटा सभी समान रूप से प्रकृति का अत्यंत दोहन कर रहे हैं। पांच जून को हम विश्व पर्यावरण दिवस मानते हैं। केवल हमें पर्यावरण दिवस पर पर्यावरण की याद आती है और बाकी 364 दिन क्यों हम पर्यावरण को भूल जाते हैं। अगर हमें पर्यावरण को बचाना है तो हमें हर दिन धरती के पर्यावरण को बचाने का संकल्प लेना होगा।

अब हर हाल में चाहिए समाधान

● राजेंद्र सिंह

जल संकट से हम सब जूझ रहे हैं। इसका समाधान भी जानते हैं लेकिन समाधान के लिए काम नहीं करते हैं। अगर अब हमने इसके समाधान के लिए काम नहीं किया तो हमारा भविष्य संकट में है। हम बेपानी होकर आपस में लड़ेंगे। ये जंग गांव और शहर के बीच होगी। सिंचित खेती और उद्योगों के बीच होगी। गरीब और अमीर के बीच होगी। इसलिए अब हमें समस्या के समाधान पर काम करना होगा। इस समस्या के पांच समाधान हैं।

(1) वर्षाजल को समझना और सहेजना; (2) जल के वाष्पीकरण को बचाने के लिए वर्षाजल का धरती के पेट में पुनर्भरण; (3) भूजल की निकासी कम करना; (4) पानी का अनुशासित उपयोग करना; (5) जल के संस्कारपूर्वक व्यवहार को अपनाना।

ये काम करने के लिए हमें अपनी मरी हुई सूखी नदियों का सीमांकन और चिन्हीकरण करके नदी के उद्‌गम से ही जल संरक्षण कार्य शुरू करने चाहिए। नदियों के दोनों तरफ भू–संस्कृति का सम्मान करके जल संरक्षण के साथ–साथ वृक्षारोपण करना चाहिए। यहां पर मिट्टी के कटाव को रोकने के लिए ऐसी घासें लगानी चाहिए जो धरती के पेट से कम पानी खींचें। साथ ही साथ पुराने तालाबों के अतिक्रमण हटवाकर उन्हें पुनर्जीवित करना। गांव या शहर के तालाबों में गंदे जल के तालाब और साफ जल के तालाबों को अलग–अलग रखना। वर्षा जल के खाले तथा गंदे जल के नाले आपस में नहीं मिलने देना। रीवर और सीवर के अलग रखने के भारतीय सिद्धांत को हमारा राज और समाज दोनों मिलकर अपनाएं। तभी हमारा सतह का जल, अधः सतही जल, भूजल और पाताल जल को शोषण और प्रदूषण से बचेगा। और सबकी पीने–जीने की जरूरत को पूरी कर सकेगा।

पर्यावरण के संकेतों को समझिए

● अनिल जोशी

हम वनों व नदियों के दोहन को तो अपना अधिकार समझते हैं पर इनकी बेहतरी के लिए कभी हमनें सोचा है। यह घातक नजरिया है। सरकार का भी और समाज का भी। आज आश्चर्य की बात है कि सरकार और समाज वनों को लेकर भी ज्यादा गंभीर नहीं है। अगर ऐसा होता, तो सभी राज्यों के 33 प्रतिशत वन क्षेत्र के बारे में सरकार अवश्य चिंता करती। देश का एक भी मैदानी राज्य ऐसा नहीं है जो 33 प्रतिशत वन क्षेत्र के मानक पर खतरा उतरता हो। वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए केन्द्र सरकार को सभी राज्यों से पर्यावरण रिपोर्ट मंगानी चाहिए और राज्यों के प्राकृतिक संसाधनों के हालात पर गंभीर बहस होना चाहिए। हर वर्ष राज्यों को अपनी प्राकृतिक संपदा और उनकी बेहतरी के प्रयासों की रिपोर्ट तैयार करनी चाहिए।

अब मत करो देर. . .

● अनुपम मिश्र

दिवस और दिन में अंतर होता है। दुर्भाग्य से पर्यावरण दिवस एक दिन के लिए आता है और 364 दिन उसे बर्बाद करने के लिए आते हैं। हर जगह खनन, जंगलों की कटाई, औद्योगिकीकरण के नाम पर नए–नए कारखानों का लगाना आर्थिक विकास दर को लगातार बढ़ाने के नाम पर जो कुछ भी समाज में आज हो रहा है उसमें पर्यावरण के सभी अंग छिन्न–भिन्न हो चले हैं। थोड़ा पीछे पलट कर देखें तो देश की सदानीरा नदियों को बचाने के लिए जो कानून 1972 में बने थे, वे आज 40 साल बाद खुद ही दम तोड़ते से दिखते हैं। इनकी सफाई के लिए जो कानून और योजनाएं बनी थी, आज उनके ऊपर से गंगा–यमुना का भयानक रूप से प्रदूषित हो चुका पानी बह चुका है। उसके बाद भी हमें किसी नए कानून और नई योजना का इंतजार रहता है। जो ऊपर नदियों के साथ हुआ वही नीचे छिपे भू–जल भंडारों के साथ भी हुआ है। देश में अनेक जिले आज अपने नीचे का पानी उलीच कर उन सब नकदी फसलों में, कारखानों में खपा चुके हैं। जिनका मान व समान और फल व फूल देश का पेट भरने के बदले ज्यादातर निर्यात के काम आते हैं। गरीब बताए गए राज्यों की बात छोड़ ही दें तो आज महाराष्ट्र जैसे संपन्न राष्ट्र में भी अकाल पसरा हुआ है। गुजरात के जिस कुशल नेतृत्व का इतना हल्ला हम पिछले कुछ समय से सुन रहे हैं, वहां भी 14 जिलों में अकाल चुपचाप पसर चुका है। देश में राजनीति का स्तर ज्यादा गिरा हुआ है या भूजल का ज्यादा गिरा है यह पक्का नहीं कहा जा सकता है। इसलिए दिवस और दिनों में अंतर होता है। इस बात को हम कम से कम पर्यावरण के दिवस पर न भूलें।

बदलनी होगी अपनी जीवनशैली

● देविन्दर शर्मा

हरित क्रांति के समय दुनियाभर के किसानों और उपभोक्ताओं ने टिकाऊ किसानी तरीकों से जमीन की उर्वरा शक्ति को बरकरार रखने के महत्व को महसूस किया। इन तरीकों से बंजर और परती जमीन को भी अधिक उत्पादक बनाया जा सकता है। इन विधियों में रासायनिक तत्वों, उर्वरकों और कीटनाशकों का इस्तेमाल नहीं किया जाता है। कृषि पारिस्थितिकी मानकों के अनुसार की जाने वाली खेती से न केवल पैदावार बढ़ाकर किसानों की आय सुनिश्चित की जा सकती है बल्कि जैव विविधता के नुकसान को रोक लगाई जा सकती है और जलवायु परिवर्तन के समग्र असर को कम किया जा सकता है। भारत में प्राकृतिक किसानी या ऑर्गेनिक खेती का चलन बढ़ रहा है। लाखों किसान अब कृषि पारिस्थितिकी तरीकों को अपना रहे हैं। इससे मृदा की उर्वरा शक्ति को वापस पाया जा रहा है बल्कि उनके आजीविका के अवसरों में भी वृद्धि हो रही है। दुनिया के सबसे बड़े कृषि–पारिस्थितिकी तरीकों से की जाने वाली खेती में से एक आंध्र प्रदेश में अमल में लाई जा रही है।

भोजन की बर्बादी से बिगड़ता पर्यावरण

● डॉ. जगदीप सक्सेना

एक तरफ बढ़ती भूख तो दूसरी ओर भोजन की बर्बादी। सामाजिक बुराई के तौर पर उभरी भोजन की बर्बादी को गहराई से देखें तो यह पर्यावरण के लिए भी गंभीर समस्या है। जब भी कहीं अनाज का एक दाना भी बर्बाद होता है, पर्यावरण पर चोट जरूर पड़ती है। इसीलिए इस बार विश्व पर्यावरण दिवस पर दुनिया का ध्यान भोजन और खाद्य सामग्री की बर्बादी की ओर खींचा गया। अतः भोजन की बर्बादी को रोकना चाहिए जिससे पर्यावरण की सुरक्षा को बढ़ावा मिलेगा और कितनों भूखों को खाना भी मिल सकेगा।

इन बातों का रखें ख्याल तो सुधार जाएगा पर्यावरण

● पानी की बर्बादी को रोके ● बिजली बर्बादी को रोके ● निजी वाहन का कम करें इस्तेमाल ● शाकाहारी बनें ● हमेशा थैला लेकर बाजार जाए ● ई–वेस्ट घटाएं ● कागज का कम से कम करें इस्तेमाल ● पेड़ लगाने की आदत डालें ● भोजन की बर्बादी को रोके ● तेज आवाज से बचें।

चर्चा

वोट बटोरने के लिए गलत कदम

क्या यह धारणा भारत के आम मुसलमानों के साथ अन्याय नहीं है? कांग्रेसनीत संप्रग सरकार ने सत्ता में आते ही राजग सरकार द्वारा लागू पोटा को निरस्त कर दिया था। सेक्युलरवादियों का आरोप था कि सांप्रदायिक भाजपा ने मुसलमानों को प्रताड़ित करने के लिए पोटा जैसा कानून बनाया था। आतंकवाद से निपटने के लिए कड़े कानून नहीं होने का परिणाम है कि आज कश्मीर से कन्याकुमारी तक इस्लामी चरमपंथियों के हौसले बुलंद हैं।

■ बलवीर पुंज

कट्टरवाद के तुष्टीकरण की होड़ में उत्तर प्रदेश की सरकार आतंकी गतिविधियों में लिप्त होने के आरोपियों की रिहाई के लिए बेचैन है। वस्तुतः पिछले साल विधानसभा चुनावों के दौरान ही सेक्युलर दलों में मुस्लिम मतदाताओं को रिझाने के लिए होड़ लगी थी। राज्य सरकार की बेताबी चुनाव के दौरान किए गए वादों को पूरा करने का प्रयास है।

सत्ता हासिल करने के कुछ समय बाद ही सरकार ने 2006 के वाराणसी बम धमाके के आरोपी वलीउल्लाह और शमीम को रिहा करने का निर्णय किया था। सरकार के इस निर्णय को अदालत में चुनौती दी गई थी, जिस पर फैसला सुनाते हुए अदालत को कड़वी टिप्पणी के लिए बाध्य होना पड़ा। न्यायाधीश आर.के. अग्रवाल और आर.एस.आर. मौर्य की पीठ ने तब कहा था, आज आप उन पर से मुकदमा हटाना चाहते हैं, कल क्या उन्हें पद्म भूषण देंगे? किंतु सरकार इस फटकार से जरा भी विचलित नहीं है।

उत्तर प्रदेश सरकार कचहरी ब्लास्ट केस में गिरफ्तार मोहम्मद खालिद मुजाहिद और तारिक कासमी पर दर्ज मुकदमे वापस लेने का मन बना चुकी थी। खालिद की कोर्ट पेशी के दौरान मृत्यु हो चुकी है। सरकार ने उसके परिजनों को छह लाख रुपये मुआवजा देने की घोषणा की है। एक आरोपी आतंकी के लिए इतनी उदारता क्यों? आतंकियों के हाथों मारे जाने वाले सुरक्षा जवानों या नागरिकों के लिए सरकार ऐसी ही चिंता क्यों नहीं करती? कट्टरपंथियों का आरोप है कि इन दोनों को एसटीएफ ने फर्जी तरीके से गिरफ्तार किया था। इस शिकायत की जांच के लिए बाकायदा

आरडी निमेश कमीशन का गठन किया गया था। कमीशन की रिपोर्ट में कहा गया है, 'खालिद मुजाहिद और कासमी की बाराबंकी में 22 दिसंबर, 2007 को हुई गिरफ्तारी संदिग्ध लगती है। इस गिरफ्तारी को लेकर दिए गए बयान व गवाहों पर विश्वास नहीं किया जा सकता।'

वास्तविकता क्या है? 22 दिसंबर, 2006 को दिल्ली क्राइम ब्रांच और आईबी ने हुजी कमांडर व डोडा,

कट्टरवाद के तुष्टीकरण की होड़ में उत्तर प्रदेश की सरकार आतंकी गतिविधियों में लिप्त होने के आरोपियों की रिहाई के लिए बेचैन है। वस्तुतः पिछले साल विधानसभा चुनावों के दौरान ही सेक्युलर दलों में मुस्लिम मतदाताओं को रिझाने के लिए होड़ लगी थी। राज्य सरकार की बेताबी चुनाव के दौरान किए गए वादों को पूरा करने का प्रयास है।

जम्मू–कश्मीर के निवासी मोहम्मद अमीन बानी को गिरफ्तार किया था। पूछताछ में बानी ने ही इन दोनों आतंकियों का खुलासा किया था। उसने बताया कि 28 नवंबर, 2006 को वह खालिद मुजाहिद से मिलने जौनपुर गया था, जहां उसकी मुलाकात आजमगढ़ के तारिक कासमी से हुई। दोनों ने कश्मीर में चल रहे आंदोलन में सक्रिय सहयोग के लिए हामी भरी थी।

खालिद मुजाहिद तो 2004 से ही हुजी कमांडरों के संपर्क में था। हवाला के साढ़े चार लाख रुपयों के साथ गिरफ्तार बानी ने पूछताछ में बताया था कि इस रकम से हुजी के लिए असलहे व अन्य संसाधन जुटाने थे। उसने बताया कि जौनपुर निवासी मोहम्मद खालिद ने उल्फा के लोगों से असलहे खरीदने के लिए हुजी से रकम जुटाने को कहा था। बानी इसी रकम को लेने के लिए दिल्ली आया था। मोहम्मद खालिद मुजाहिद और तारिक कासमी की गिरफ्तारी से एक साल पूर्व ही खुद हुजी के कमांडर ने उनके आतंकी गतिविधियों में संलग्न होने का खुलासा कर दिया था। ऐसे में इन दोनों आतंकियों को बेगुनाह कैसे बताया जा रहा है?

जिन युवकों पर आतंकवाद में शामिल होने का आरोप है, उन्हें सेक्युलर दल न केवल अपनी ओर से 'क्लीन चिट' थमा रहे हैं, बल्कि भारत की न्यायिक व्यवस्था को दुनिया की नजरों में कलंकित करने का भी कुप्रयास कर रहे हैं। यह कैसी मानसिकता है? अभी कुछ समय पूर्व सेक्युलर दलों के नेताओं ने प्रधानमंत्री से मिलकर जेलों में बंद कथित निर्दोष मुसलमानों को रिहा करने की अपील की थी। इस देश की न्याय व्यवस्था को कलंकित करने का प्रयास करने वाले सेक्युलरिस्टों को अजमल कसाब का दृष्टांत सामने रखना चाहिए। ज्वलंत साक्ष्यों और सैकड़ों प्रत्यक्षदर्शियों की गवाही के बावजूद कसाब को दंडित करने में न्यायपालिका को चार साल लग गए। इस लंबी न्यायिक प्रक्रिया में कसाब को अपना पक्ष रखने का पर्याप्त अवसर भी दिया गया।

इस तरह की क्षुद्र राजनीति से जहां एक ओर आतंकवाद को प्रोत्साहन मिलता है वहीं सुरक्षा बलों का मनोबल भी टूटता है। वस्तुतः यह विकृत मानसिकता वोट बैंक की सेक्युलर राजनीति से प्रेरित है। इसी मानसिकता के कारण देश की संप्रभुता के प्रतीक संसद पर हमले के आरोपी अफजल गुरु की फांसी की सजा लंबे समय तक अधर में लटकाए रखी गई। कश्मीर के तत्कालीन कांग्रेसी मुख्यमंत्री गुलाम नबी आजाद ने पत्र लिखकर केंद्र सरकार को चेतावनी दी थी कि अफजल को फांसी देने से कानून एवं व्यवस्था बिगड़ने का खतरा है तो वर्तमान मुख्यमंत्री उमर अब्दुल्ला घाटी में फिर से आतंकवाद के जिंदा होने की धमकी देते रहे।

क्या सेक्युलर नेताओं का यह रवैया मुसलमानों के राष्ट्रप्रेम पर प्रश्न नहीं लगाता? क्या तथाकथित सेक्युलर दल यह मानकर चलते हैं कि भारत के साधारण मुसलमान की सहानुभूति भारत के साथ न होकर आतंकियों के साथ है? क्या यह धारणा भारत के आम मुसलमानों के साथ अन्याय नहीं है? कांग्रेसनीत संप्रग सरकार ने सत्ता में आते ही राजग सरकार द्वारा लागू पोटा को निरस्त कर दिया था। सेक्युलरवादियों का आरोप था कि सांप्रदायिक भाजपा ने मुसलमानों को प्रताड़ित करने के लिए पोटा जैसा कानून बनाया था। आतंकवाद से निपटने के लिए कड़े कानून नहीं होने का परिणाम है कि आज कश्मीर से कन्याकुमारी तक इस्लामी चरमपंथियों के हौसले बुलंद हैं।

इस देश की जांच एजेंसियों या पुलिस पर मुस्लिम समाज के उत्पीड़न का आरोप समझ से परे है। न तो पुलिस और न ही सरकार ने आतंकवाद को लेकर मुस्लिम समुदाय को कठघरे में खड़ा किया है। अभी हाल में दिल्ली के बाटला हाउस मुठभेड़ में सेक्युलरिस्टों ने आतंकियों के हाथों शहीद हुए जवानों की अनदेखी कर इस मुठभेड़ को फर्जी साबित करने की कोशिश की थी। मुसलमानों को अपने समुदाय में छिपे उन भेड़ियों की तलाश करनी चाहिए जो दहशतगदरें को पनाह देते हैं। मुंबई पर इतना बड़ा आतंकी हमला हुआ, क्या वह सीमा पार कर अचानक घुस आए जिहादियों के द्वारा संभव था?

मुस्लिम कट्टरपंथियों के साथ कांग्रेस व उसके सेक्युलर संगियों का गठजोड़ नया नहीं है। शाहबानो से लेकर अब्दुल नसीर मदनी तक सेक्युलर विकृतियां सभ्य समाज के लिए गंभीर खतरा हैं। कोयंबटूर बम धमाके के आरोपी मदनी को पैरोल पर रिहा करने के लिए कांग्रेस और मार्क्सवादियों ने होली की छुट्टी वाले दिन सदन का विशेष सत्र आयोजित कर सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित किया था। अभी मदनी कर्नाटक पुलिस की गिरफ्त में है। केरल में उसका आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए कांग्रेस और मार्क्सवादियों में होड़ लगी रहती है। आज यदि सेक्युलर दल आतंकवाद के आरोप में जेलों में बंद मुस्लिम युवाओं से सहानुभूति प्रकट कर रहे हैं तो आश्चर्य कैसा? ❑

प्रतिक्रिया

वार्ता से निकलेगा समाधान

सरकार को यह नहीं भूलना चाहिए कि नक्सलियों का यह संघर्ष असमानता और अन्याय के खिलाफ है जो नब्बे के दशक के बाद और तेजी से बढ़ा है। शोषण, दमन, गरीबी, बेरोजगारी से जूझ रहे उन लोगों की परेशानियां पिछले दो दशकों में और ज्यादा बढ़ी हैं, वहां कॉरपोरेट्स, नेताओं और नौकरशाहों ने मिलकर आदिवासियों और दलितों को उनके जल, जंगल और जमीन से बेदखल किया है।

■ अभिषेक रंजन सिंह

कल तक सुरक्षाकर्मियों और अपने विरोधियों को निशाना बनाने वाले नक्सलियों ने अब राजनेताओं पर हमला कर आर–पार की लडाई का संकेत दे दिया है। छत्तीसगढ के सुकमा में कांग्रेस की परिवर्तन यात्रा में शामिल नेताओं पर हमला कर उन्होंने यह साबित कर दिया है कि आने वाले दिनों में उनकी लडाई और हिंसक होने वाली है। नक्सलियों ने इस घटना को बेहद सुनियोजित तरीके से अंजाम दिया, लेकिन सुरक्षाकर्मियों और खुफिया एजेंसियों को इलाके में नक्सलियों की इतनी बड़ी जुटान की भनक तक नहीं लगी।

हालांकि इस घटना के फौरान बाद रायपुर और नई दिल्ली में सियासी सरगर्मियां तेज हो गईं। केंद्र सरकार ने एक आपात बैठक बुलाई और सुरक्षाबलों की अतिरिक्त टुकडियों को छत्तीसगढ के नक्सल प्रभावित इलाकों में भेजने का फैसला किया। सरकार के रूख से साफ है कि आने वाले कुछ दिनों में वह नक्सलियों के खिलाफ सख्त कदम उठाए जाएंगे। लेकिन सरकार को यह नहीं भूलना चाहिए कि नक्सलियों का यह संघर्ष असमानता और अन्याय के खिलाफ है जो नब्बे के दशक के बाद और तेजी से बढ़ा है। शोषण, दमन, गरीबी, बेरोजगारी से जूझ रहे उन लोगों की परेशानियां पिछले दो दशकों में और ज्यादा बढ़ी हैं, वहां कॉरपोरेट्स, नेताओं और नौकरशाहों ने मिलकर आदिवासियों और दलितों को उनके जल, जंगल और जमीन से बेदखल किया है।

पिछले 23 वर्षों में भूमि अधिग्रहण की वजह से 10 करोड़ लोगों का विस्थापन हुआ है, जिनमें आदिवासियों की संख्या सर्वाधिक है। आखिर यह कैसा विकास है, जो लोगों को दर–दर की ठोकरें खाने को मजबूर कर रहा है। दरअसल, यह केन्द्र सरकार की गलत आर्थिक नीतियों का नतीजा है कि आज चारों तरफ जमीन और खनिज संपदाओं के सौदागर ही नजर आते हैं। यही वजह है कि हाट–बाजारों में अब मूंग, उडद, चना गेहूं, जौ, खेसारी,, गुड़ आदि नहीं

महेन्द्र कर्मा

(सलवा जुडूम के नेता)

वनवासियों को साथ लेकर नक्सलियों के विरूद्ध जंग छेड़ने वाले महेंद्र कर्मा की 25 मई को नक्सलियों ने कांग्रेस की परिवर्तन रैली पर हमला कर हत्या कर दी। महेन्द्र कर्मा ने 1989 से ही नक्सलियों के खिलाफ आंदोलन चला रखा था। वे 1996 में पहली बार सांसद चुने गए। कर्मा ने 2005 में सलवा जुडूम की शुरूआत की थी। नक्सलियों के विरूद्ध अभियान की वजह से कर्मा को 'बस्तर का शेर कहा जाता था।

हिंसा किसी समस्या का समाधन नहीं हो सकती

छत्तीसगढ़ के जगदलपुर में 25 मई को कांग्रेस पार्टी के काफिले पर हुए नक्सली हिसंक हमले से देश की जनता को भारी सदमा तथा गहरा दुख हुआ है। किसी राजकीय दल के काफिले पर हुआ यह सबसे बड़ा हिंसक हमला है। इसकी हम कड़ी भर्त्सना करते हैं। हिंसा किसी भी समस्या का समाधान नहीं हो सकती है। देश में शांतिपूर्ण परिस्थिति निर्माण करने के लिए शासनकर्ताओं द्वारा पिछड़े वर्ग एवं वनवासी विस्तार में सुविधाओं के अभाव एवं पिछड़ेपन की शीघ्रातिशीघ्र दूर करने के कारगर उपाय करने चाहिए तथा किसी भी प्रकार की हिंसक गतिविधि करने वालों से कड़ाई से निपटना चाहिए।

लोकतांत्रिक पद्धति से अपने कार्य तथा अधिकारों का निर्वहन करने में सभी को सुरक्षा प्रदान करने के लिए भी प्रशासन अधिक सतर्कता दिखाए। इस घृणास्पद हिसंक हमले में जिनके प्राण गए उनको सद्‌गति प्राप्त हो, हम ऐसी कामना करते हैं।

– राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरकार्यवाह श्री भैया जी जोशी

मिलता, बल्कि यहां अनाज पैदा करने वाली उपजाऊ जमीनें बिकती हैं कुछ और उत्पादित करने के लिए।

यहां केंद्र सरकार से यह सवाल पूछना लाजिमी है कि जिन राज्यों में खनिज संपदाएं मौजूद हैं, वहां बडे पैमाने पर अवैध खनन का धंधा क्यों चल रहा है? साथ ही उसका ठेका मुख्यमंत्रियों और नेताओं के करीबी लोगों को ही क्यों मिलता है? असल में सुकमा की घटना कई बातों की ओर इशारा करती है। कल तक नक्सलियों के निशाने पर सुरक्षाकर्मी होते थे, लेकिन अब उन्होंने नेताओं पर सीधा हमला बोल दिया है। देश में जैसे हालात बन रहे हैं, उसे देखकर यह आशंका प्रबल हो गई है कि आने वाले दिनों में यह हिंसा और तेज होगी। देश के कई रक्षा विशेषज्ञ नक्सलवाद की समस्या पर नई दिल्ली में होने वाली समीक्षा बैठकों में केंद्र सरकार को मशविरा देते हैं कि नक्सलियों से निपटने के लिए सेना का इस्तेमाल करना जरूरी है।

इसमें कोई शक नहीं कि जबरन भूमि अधिग्रहण की वजह से देश में नक्सलवाद का विस्तार हुआ है। जिन लोगों को उनकी पुश्तैनी जमीनों से बेदखल किया जा रहा है उनकी फरियाद

सुनने वाला भी कोई नहीं है। अब सिर्फ गरीब लोग ही नहीं, बल्कि समाज के हर वर्ग के पीड़ित लोग नक्सलियों से मदद मांग रहे हैं। इस मुद्दे पर केंद्र सरकार और उनके सलाहकारों की दलाल चाहे जो भी हो, लेकिन नक्सलवाद की समस्या से निपटने का एक ही रास्ता है और वह रास्ता है बातचीत का। हालांकि प्रधानमंत्री और गृहमंत्री इस विकल्प की ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं। बातचीत के मुद्दे पर सरकार का रुख हमेशा नकारात्मक ही रहा है। जब भी सरकार और नक्सलियों के दरम्यान बातचीत का अवसर आया तो सरकार ने अपनी अति समझदारी से इस मौके को गंवा दिया। असल में सरकार अपनी शासक मानसिकता से बाहर नहीं निकल पा रही है और यही वजह है कि नक्सलियों से होने वाली बातचीत हमेशा बेनतीजा रहती है। चाहे केंद्र की सरकार हो या राज्य की, उन्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि नक्सली किसी गैर मुल्क के लोग नहीं है। उनकी जो मांगे हैं, उन्हें किसी भी सूरत में अनुचित नहीं ठहराया जा सकता। सरकार को चाहिए कि वह नक्सलियों को बातचीत के लिए आमंत्रित करे। हर समस्या का समाधान बातचीत से संभव है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि जंग से किसी को कुछ भी हासिल नहीं हुआ है, क्योंकि जंग तो खुद एक मसला है। यह मसलों का हल क्या देगी। ❑

राजनीतिक चरित्र में बदलाव की दरकार

देश के सारे राजनीतिक दलों को माओवादियों के इस चरित्र पर अवश्य विचार करना होगा। किंतु हमारे राजनीतिक दल एक–दूसरे के प्रति दुर्भावना से परे होकर देशहित में एकजुट ईमानदार विचार–विमर्श कर ही नहीं सकते। वर्तमान राजनीति इस सामान्य स्थित से काफी दूर स्वयं आत्मघाती अवस्था का शिकार हो चुकी है। प्रधानमंत्री ने पहली बार न झुकने वाला वक्तव्य नहीं दिया है। आप देखेंगे कि केवल माओवादी हमला ही नहीं, हर आतंकवादी हमले पर उनका लगभग ऐसा ही बयान आता है।

■ अवधेश कुमार

पूरा राजनीति प्रतिष्ठान इस समय सन्न है। ऐसा लगता है जैसे केन्द्र की मुख्य विपक्षी पार्टी एवं कांग्रेस दोनों का सन्निपात हो गया है। इसलिए माओवादी हमले पर उनकी भाषा में एक दूसरे के विरूद्ध आम तल्खी गायब है। देश की मुख्य विपक्षी भाजपा ने माओवाद की समस्या से निपटने के लिए देश के एकजुट होने की अपील की है। प्रधानमंत्री ने कहा है कि हम कभी माओवादी हमलों

के समक्ष झुकेंगे नहीं। सामान्य तौर पर सरकार एवं विपक्ष की इन बातों से कोई असहमत नहीं हो सकता। किसी प्रकार की हिंसा का मुकाबला करने के लिए एकजुटता और सामूहिक संकल्प अपरिहार्य है। हिंसा में विश्वास रखने वालों को छोड़कर कोई नहीं चाहेगा कि देश हिंसक अभियान चलाने वालों के सामने झुके। आतंकवाद का मुकाबला हमेशा देश के सामूहिक दृढ़ संकल्प, इच्छाशक्ति एवं समुचित रणनीति से ही किया जा सकता है।

छत्तीसगढ़ के जगदलपुर हमले से केवल राजनीतिक प्रतिष्ठान में ही नहीं, आम लोगों में भी एक साथ गम और गुस्से का भाव पैदा हुआ है। वैसे तो हर हिंसा के बाद लगभग ऐसा ही भाव पैदा होता है, लेकिन पहली बार एक साथ केंद्र की सत्तारूढ़ और प्रदेश की विपक्षी पार्टी के इतने नेताओं को हताहत किया गया है। इस कारण भावना का परिणाम कुछ ज्यादा प्रदर्शित हुआ है। हमलावरों को लक्ष्य करके भारी सुरक्षा ऑपरेशन चल रहा है और सुरक्षा की पुनः व्यापक समीक्षा आरंभ हो गई है।

निस्संदेह वर्तमान माओवादियों के हमलों में ज्यादातर निर्दोष नागरिक मारे गए हैं, जिससे उनकी छवि आम आतंकवादियों जैसी बनी है, लेकिन उनका मुख्य निशाना सुरक्षा बल एवं नेता ही होते हैं। इस हमले में भी उन्होंने पत्रकारों को नहीं छुआ, पत्रकारों से कहा कि आप लोग यहां से हट जाओ। हमें अपना काम करने दो। स्थानीय पत्रकारों के अनुसार उनके खिलाफ सलवा जुडूम का नेतृत्व करने वाले महेन्द्र कर्मा को जिस निर्दयता से उन्होंने धुना, उत्पीड़ित किया और अंत में असंख्य गोलियों से भूना वह रोंगटे खड़े करने वाला है। उनकी जगह यदि कोई विपक्ष का नेता भी होता तो संभवतः उनकी दशा भी ऐसी ही होती।

वस्तुतः देश के सारे राजनीतिक दलों को माओवादियों के इस चरित्र पर अवश्य विचार करना होगा। किंतु हमारे राजनीतिक दल एक–दूसरे के प्रति दुर्भावना से परे होकर देशहित में एकजुट ईमानदार विचार–विमर्श कर ही नहीं सकते। वर्तमान राजनीति इस सामान्य स्थित से काफी दूर स्वयं आत्मघाती अवस्था का शिकार हो चुकी है। प्रधानमंत्री ने पहली बार न झुकने वाला वक्तव्य नहीं दिया है। आप देखेंगे कि केवल माओवादी हमला ही नहीं, हर आतंकवादी हमले पर उनका लगभग ऐसा ही बयान आता है।

आंतरिक सुरक्षा पर हर वर्ष मुख्यमंत्रियों, प्रदेश के गृह सचिवों, पुलिस महानिदेशकों आदि का सम्मेलन होता है। जरा उनके भाषणों एवं किए गए निर्णयों को पढ़ लीजिए।

यह कहना गलत होगा कि माओवाद प्रभावित क्षेत्रों के लिए विकास एवं सुरक्षा की योजनाएं न बनीं, उनकी समय–समय पर समीक्षा नहीं होती या फिर उन समीक्षाओं के निष्कर्षों के अनुसार कदम बिल्कुल नहीं उठाए जाते। परंतु यदि ये माओवाद का अंत करने में बिल्कुल सफल नहीं हो रहे हैं तो इसका अर्थ साफ है – समस्याओं की सही पहचान नहीं हो सकी है और जब पहचान ही नहीं तो फिर निदान कहां से होगा। क्या केंद्र या राज्य राज्य सरकारें इसे स्वीकार करेंगी? कतई नहीं। इसे स्वीकार करने का अर्थ होगा अपनी विफलता मान लेना।

किसी राजनीतिक दल में इतना नैतिक बल नहीं है कि अपनी विफलता स्वीकारे। जब दलों में ही नैतिक बल नहीं तो फिर प्रशासन व सुरक्ष महकमा क्यों ईमानदारी से रिपोर्ट करने जाए।

पता नहीं सरकार और पूरा राजनीतिक प्रतिष्ठान यह क्यों भूल जाता है कि अगर माओवादी वारदातें कर रहे हैं, आम नागरिक और सुरक्षा बल के जवान मारे जा रहे हैं तो यह उनकी सशक्त उपस्थिति के ही सबूत हैं। भले हताहतों की संख्या कम हो या ज्यादा। एक वर्ष हिंसा कम हुई तो अगले किसी वर्ष वह बढ़ भी सकती है। आखिर पूरी सुरक्षा व्यवस्था को चुनौती देकर वे हमला करने में सफल हो रहे हैं?

वास्तव में देश की सबसे बड़ी पार्टी की यात्रा पर सफल हमले एवं नेताओं व सुरक्षा बलों की नृशंस हत्या करके क्रूर माओवादियों ने राज्य एवं केंद्र सरकार दोनों, जिसमें राजनीतिक प्रतिष्ठान, प्रशासन, सुरक्षा महकमा सभी शामिल हैं के झूठ को, अनैतिक प्रचार को नंगा किया है।

इस भयावह सच को पुनः साबित किया है कि हमारी राज व्यवस्था किस तरह जर्जर होकर स्वयं की रक्षा करने में भी सफल नही रही है। इसमें हम सरकार व विपक्ष की एकजुटता या न झुकने के बयान को गंभीरता से ले ही नहीं सकते। तो क्या हम ऐसे ही माओवादियों का रक्तरंजित कारनामा देखने व झेलने को अभिशप्त है। अगर राजनीतिक नेतृत्व के चरित्र में बदलाव नहीं हुआ यानी ईमानदारी और समझदारी से स्थितियों का आकलन कर प्रशासन व सुरक्षा एजेंसियों का संकल्पबद्ध दिशा–निर्देश नहीं हुआ तो बिल्कुल हम अभिशप्त रहेंगे।

आखिर कितने नेता हैं, जो आज खुलकर जनता के बीच माओवादियों के खिलाफ जाकर उन्हें अहिंसक चुनौती देने का सतत साहस प्रदर्शित कर सकेंगे? ❑

रपट

हम बनेंगे सामाजिक संरचना में खुशहाली के नए डाकिये

आर्थिक रूप से कमजोर तबके में कामकाजी जरूरतमंद महिलाओं को सुगम ऋण योजना दिल्ली में 2010 में प्रारंभ हुई। अभी तक 20 कार्यक्रमों के माध्यम से लगभग 5000 महिलाओं को स्वावलंबन पथ पर अग्रसर करती 'चौपाल' इस क्षेत्र में सरकारी योजनाओं के बराबरी कर रही है।

दिल्ली में तेजी से बढ़ रहे चौपाल के कार्यक्रम श्रृंखला में एक और कड़ी जुड़ गई। गत 2 जून 2013 को आदर्श नगर क्षेत्र में 215 महिलाओं को लघु ऋण वितरण कार्यक्रम राजकुमार भाटिया के नेतृत्व में हुआ। आर्थिक रूप से कमजोर तबके में कामकाजी जरूरतमंद महिलाओं को सुगम ऋण योजना दिल्ली में 2010 में प्रारंभ हुई। अभी तक 20 कार्यक्रमों के माध्यम से लगभग 5000 महिलाओं को स्वावलंबन पथ पर अग्रसर करती 'चौपाल' इस क्षेत्र में सरकारी योजनाओं के बराबरी कर रही है।

कार्यक्रम में बोलते हुए श्री मुरलीधर राव ,राष्ट्रीय महामंत्री भाजपा ने कहा कि समाज को भी अपना उत्तरदायित्व निभाना है। सभी काम बैंक पूर्ण नहीं करेंगे। हमें उस खाई को पाटना है और समाज के पीड़ित और उपेक्षित वर्गों के लोगों के बीच विश्वास जगाना है कि उनकी भी चिंता होती है। कार्यक्रम संयोजक राजकुमार भाटिया को बधाई देते हुए उन्होंने कहा कि ये समाज में खुशहाली के नए डाकिये हैं। ऋण से लाभान्वित महिलाएं अपने काम में मेहनत से समाज को आगे बदायेंगी। दिल्ली भाजपा के अध्यक्ष श्री विजय गोयल ने चौपाल कि सराहना की एवं अधिकाधिक लोगों को इस से जुड़ने हेतु प्रेरित किया। उन्होंने स्वावलंबन को समाज की मुखर आवाज बताया।

> **"चौपाल और वरिष्ठ नागरिक केसरी क्लब का गठबंधन सामाजिक व्यवस्था में नए आयाम स्थापित करेगा। हम सभी मिलकर आगे बढ़ेंगे।"**
>
> **– श्रीमती किरण चोपड़ा**

चौपाल की संरक्षिका एवं वरिष्ट नागरिक केसरी क्लब की संस्थापक श्रीमती किरण चोपड़ा ने चौपाल की भूरी–भूरी प्रशंसा करते हुए कहा कि चौपाल और वरिष्ठ नागरिक केसरी क्लब का गठबंधन सामाजिक व्यवस्था में नए आयाम स्थापित करेगा। हम सभी मिलकर आगे बढेंगे।

महामंडलेश्वर महंत श्री नवल किशोर दास रामायणी जी ने आशीर्वचन कहे एवं द्रोणाचार्य पुरस्कृत श्री भूपेंद्र धवन ने भी इस कार्यक्रम में शिरकत की। कार्यक्रम संयोजक श्री राजकुमार भाटिया ने निवेदक टीम और सभी उपस्थित लोगों के प्रति आभार व्यक्त किया। ❑

किसानों को दिल्ली में जाकर आवाज बुलंद करनी होगी

आज किसान कर्ज के दलदल में धंसता जा रहा है। कर्ज के मारे किसान आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहा है। केन्द्र की सरकार किसानों को किसी तरह की राहत देने के बजाय खेती में इस्तेमाल होने वाली चीजों के दाम बढ़ाकर किसान की कमर तोड़ने का काम कर रही है।

31 मई 2013 को जींद में राज्य स्तरीय किसान महापंचायत का आयोजन हुआ। महापंचायत में मुख्य वक्ता स्वदेशी जागरण मंच के पूर्व संयोजक मुरलीधर राव (भाजपा) ने कहा कि प्रधानमंत्री ऐसे बादल हैं जो न तो बरसते हैं और न गरजते हैं वह मौन बादल हैं।

उन्होंने कहा केन्द्र सरकार उसी की बात सुनती है जो दिल्ली में जाकर शोर मचाता है। हरियाणा के किसानों को भी गेहूं पर 300 रुपए प्रति क्विंटल बोनस के लिए दिल्ली में जाकर आवाज बुलंद करनी होगी। इसमें वह किसानों का खुद नेतृत्व करने के लिए भी आगे आएंगे।

आज किसान कर्ज के दलदल में धंसता जा रहा है। कर्ज के मारे किसान आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहा है। केन्द्र की सरकार किसानों को किसी तरह की राहत देने के बजाय खेती में इस्तेमाल होने वाली चीजों के दाम बढ़ाकर किसान की कमर तोड़ने का काम कर रही है। स्वामीनाथन आयोग की रिपोर्ट पर केंद्र सरकार कुंडली मारे बैठी है। यह रिपोर्ट किसान को उसकी फसल की लागत में उसका लाभ जोड़कर समर्थन मूल्य दिए जाने की वकालत करती है लेकिन केन्द्र सरकार को यह मंजूर नहीं है। हरियाणा में कानून व्यवस्था पर भी सवाल उठाते हुए उन्होंने कहा आज हरियाणा में एमरजेंसी से भी बुरे हालात हैं।

> **स्वामीनाथन आयोग की रिपोर्ट पर केंद्र सरकार कुंडली मारे बैठी है। यह रिपोर्ट किसान को उसकी फसल की लागत में उसका लाभ जोड़कर समर्थन मूल्य दिए जाने की वकालत करती है लेकिन केन्द्र सरकार को यह मंजूर नहीं है।**

मुरलीधर राव ने किसानों को अपनी बदहाली को दूर करने के लिए एकजुट होने का आह्वान करते हुए कहा कि एकजुट होकर ही किसान देश ओर प्रदेश की राजनीति के मायने बदल सकते हैं। इसके लिए अब सही समय आ गया है।

किसान पंचायत को जवाहर सैनी, अध्यक्ष स्वामी राघवानंद, विशिष्ट अतिथि सेवा सिंह, आर्य, प्रदीप सांगवान, सुभाष बराला, सुरेन्द्र आदि अनेक किसान नेताओं ने अपने विचार रखें साथ ही सभी ने किसानों की समस्याओं को दूर करवाने में हर संभव मदद का आश्वासन भी दिया। इस महापंचायत में काफी संख्या में किसानों ने भाग लिया। ❑

हमारा उद्देश्य है इस राष्ट्र का निर्माण करना, इस राष्ट्र को परम वैभव तक ले जाना। जब हम कहते हैं कि हम राष्ट्रवादी हैं, तो राष्ट्रवाद की कसौटी में राष्ट्र के उत्कर्ष की हमारी दृष्टि देश का सबसे छोटा आदमी जो सबसे गरीब, गया–बीता है, उसके उत्कर्ष को हम राष्ट्र का उत्कर्ष मानते हैं। राष्ट्र के उत्कर्ष की यही कसौटी है।

– राष्ट्रऋषि दत्तोपंत ठेंगड़ी